ह्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

Journal of Rare Buddhist Texts Research Unit

32

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
2001

ध्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

32

सम्पादक

डवङ् समतेन
निदेशक

जनार्दन पाण्डेय



दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५४५ कार्तिक पूर्णिमा ख्रीस्ताब्द २००१

सहायक-मण्डल

ठाकुरसेन नेगी
ठिनलेराम शाशनी
विजयराज वज्राचार्य

बनारसी लाल
छेरिंग डोलकर
रंजन कुमार शर्मा

३२वाँ अंक, ५५० प्रतियाँ, २००१

मूल्य : रु० ८५.००

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ, वाराणसी-२२१ ००७

मुद्रक :

शिवम् प्रिन्टर्स
सी० २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी-२२१ ००२

Dhīḥ

Journal of Rare Buddhist Texts Research Unit

32

Editors

NGAWANG SAMTEN
Director

JANARDAN PANDEY



RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH UNIT
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

B.E. 2545 KĀRTIKA PŪRṆIMĀ C.E. 2001

Vol. xxxii, 550 copies, 2001

Price : Rs. 85.00

Published by:

Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221 007

Printed by:

Shivam Printers
C. 27/273, Indian Press Colony
Maldahia, Varanasi-221 002

धीः XXXII

विषयानुक्रमणी

•

न बोधिं निष्क्लेशः क्षतगतिरवाप्नोति परमा-
मुदीर्णक्लेशस्तु स्वहितमपि कर्तुं न लभते ।
इति प्राप्तुं बोधिं स्थिरविहितवीर्येण भवता
न निर्दग्धाः क्लेशास्तृणलवलघुत्वं तु गमिताः ।।

(चक्रसंवरविवृतेः)

वज्रमहाकालस्तोत्रम्

[वज्रमहाकालस्तोत्रं तथा वज्रयोगिन्याः पिण्डार्थस्तुतिः, ये दोनों स्तोत्र इंस्टीच्यूट फॉर एडवांस स्टडीज ऑफ वर्ल्ड रिलीजन्स न्यूयार्क से प्राप्त 35 स्तोत्रों वाले संग्रह से लिये गये हैं।]

हां हां हांकारनादैः किलिकिलितरवैः भूतवेतालवृन्दैः
हुं हुंकारैः समन्तान्नरपिशितमुखै रक्तमालाकुलाङ्गैः ।
खट्वाङ्गस्कन्नपाणिर्नरकरकधरः कामरूपी विरूपी
पिङ्गाक्षः पिङ्गकेशः शवगणनलकः क्षेत्रपालोऽवताद् वः ।। 1 ।।

फें फें फेंकारनादैः प्रतिजनितवृहद्वह्निगर्भाङ्गवक्त्रः
मालां कण्ठे निधाय प्रकटभयवपुर्भूषिताङ्गोपशोभः ।
ईषद्रक्ताधरोष्ठोऽसृक्सकलवृता मालिनामुक्तपाणिः
क्लीं डां क्लीं डां निनादैर्वरदहनभुवि क्षेत्रपः पातु युष्मान् ।। 2 ।।

क्षं क्षं क्षं क्षान्तिमूर्तिः कलकलवलकृत् क्षान्तिवृद्धिं प्रकुर्वन्
क्रान्ताक्रान्तैकविश्वः कहकहकथनो नीलजीमूतवर्णः ।
ह्रीं श्रीं क्लीं मन्त्रदेहः पच पच दहनैर्जातमन्त्रः समन्ताद्
विघ्नानुत्सार्यमाणः शमयतु नियतं शात्रवान् क्षेत्रपालः ।। 3 ।।

हा हा हा हाट्टहासैरतिशयभयकृत् सर्वदाऽसत्पशूनां
पापानाम्, विघ्नहन्ता प्रतिदिवसमसौ प्राप्तसंबोधिलाभः ।
हुं फट् हुं फट् निनादैस्त्रिभुवनकुहरं प्रेरयन् पूर्णशक्तिः
पायाच्छ्रीक्षेत्रपालः कपिलतरजटाजूटक्लेशाङ्गभारः ।। 4 ।।

खं खं खं खड्गपाणिर्ललललललितो रूपतो रक्तपाणिः
रं रं रं रक्तनेत्रो रुरु रुधिरकरश्चर्चितश्चण्डवेगः ।
क्रुं क्रुं क्रुं क्रोधदृष्टिः कुह कुह कुटिलः कुञ्चिताशेषदुष्टः
डं डं डं डामराङ्गो डमरुकसहितो रक्षतात् क्षेत्रपालः ।। 5 ।।

जं जं जं याति विश्वं यमनियमयुतो यामिनोऽयामिनो वा
वं वं वं वातवेगो झटिति करकधृत् प्राप्तलोकोपचारः ।
भ्रूं भ्रूं भ्रूं भीषणाङ्गे भृकुटिकृतभयो मुक्तिवान् साधकानां
क्षं क्षं क्षं क्षेमकारी क्षपयतु दुरितं रक्षतात् क्षेत्रपालः ।।6।।

क्लां क्लां क्लां क्रान्तिमूर्तिस्त्रिभुवनमनिशं क्लेदयन् सर्वदा यः
पं पं पं पाशहस्तः परशुधृतकरः पालयन् पालनीयान् ।
मुद्राणां मन्त्रमूर्तिस्त्वभिमतफलदो मन्त्रिणां मन्त्रतुल्यः
क्षेत्राणां पालकोऽसौ सकलजिततनुः पातु युष्मांश्चिरायुः ।।7।।

क्लीं क्लीं क्लीं कृत्तिवासाः कृतरिपुनियमः क्लेशितानां सदेशः
कं कं कं कपालमाली कलिकलुषहरः कालवृन्दाभकायः ।
चं चं चं चण्डवेगः प्रचरितसमयाः कालभूतैकलोकः
सं सं सं संयतात्मा समयशुभफलं लक्ष्यतां पातु युष्मान् ।।8।।

मन्त्राणां मन्त्रकायो नियतयमद्युतिः सत्पथे शुद्धतीरे
आचार्यः साधको वा जपति च नियतं पुण्यवान् जायतेऽसौ ।
आयुः श्रीः कीर्तिलक्ष्मीधृतिबलमतुलं शान्तिपुष्टी प्रभा च
सर्वज्ञस्तस्य नित्यं दिननिशमतुलं नश्यते विघ्नजातम् ।।9।।

इति वज्रवीरमहाकालाष्टकं समाप्तम्।
कृतिरियं नागार्जुनपादानाम्।

•

वज्रयोगिन्याः पिण्डार्थस्तुतिः

वाराही शौण्डिनी चैव चण्डाली डोम्बिनी तथा ।
नटनी रजकी ब्राह्मी कपालिनी च सास(शाश्व)ता ।। 1।।

अमृताऽमृतकुण्डली च ज्ञानज्योतिः प्रकाशिका ।
सर्वाशा वीरदेवीनामियमेका महासुखा ।। 2।।

शून्यता गीयते चासौ पर(रा)शक्तिः परात्परा ।
अमृतोर्ध्वमना दिव्या उपाया नित्यवाहिनी ।। 3।।

खेचरी भूचरी चैव पातालवासिनी तथा ।
प्रवि(ति)ष्ठापूरणी नित्यं त्रैलोक्यक्षोभती (भिणी) तथा ।। 4।।

बिन्दुनादकला देवी चन्द्रसूर्यात्मिका हि सा ।
[नित्या] नैर्माणिकी चैव संभागी च महासुखा ।। 5।।

बिन्दुनादकलातीता प्रज्ञापारमिता मता ।
सर्वभावस्वभावा हि सर्वभावविवर्जिता ।। 6।।

प्रलयोत्पत्तिहीना च प्रलयोत्पत्तिकारिणी ।
शाश्वतत्वात् स्थिता प्रोक्ता शाश्वतेन च वर्जिता ।। 7।।

गम्भीराऽऽलिङ्गितोदारा महार्था स्वधिमुक्तिका ।
शून्यतात्रयहीना च प्रभास्वरस्वरूपिणी ।। 8।।

एकाराक्षररूपा च वंकाराक्षरसंगता ।
विचित्रादिक्षणैर्युक्ता चतुरानन्दरूपिणी ।। 9।।

बाह्यमण्डलचक्रेऽपि स्फुरन्ती च त्रिकायतः ।
कायवाक्चित्तभावेषु कायवाक्चित्तभूषणी ।। 10।।

अतीत्य कायवाक्चित्तैः समत्वेन च मध्यगा ।
नैरात्म्यरूपिणी देवी तथतायां प्रतिष्ठिता ।। 11 ।।

कमलकुलिशाक्रान्तशून्यतात्रयरूपिणी ।
ललनारसनायोगादवधूती महासुखा ।। 12 ।।

संसारतारणी चैषां तथा तासां प्रतीत्यजा ।
यां लब्ध्वा योगिनो मुक्ता भवसंसारबन्धनात् ।। 13 ।।

इत्येषा ऋद्धिदा प्रोक्ता सिद्धिदा चैव योगिनी ।
मोक्षद्वारपरा चैव सततभ्यासकारिणाम् ।। 14 ।।

वज्रवत् कुरुते देहं रससिद्धिं ददाति च ।
गुरुपादप्रसादेन लब्धेयं वज्रयोगिनी ।। 15 ।।

य (ए)तस्याः पाठमात्रेण पुण्यसंभारमादरात् ।
प्राप्नोति सततं योगी ज्ञानसंभारसंभृतः ।। 16 ।।

श्रीगुह्यसमयतन्त्रे पिण्डार्थाः षोडशश्लोकास्त्रिकायवज्रयोगिन्याः समाप्ताः ।

कृतिरियं सिद्धाचार्यश्रीविरूपादानामिति ।



अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातु
एवं
धर्मोदयाभिसम्बोधिप्रपञ्चता

— जनार्दन पाण्डेय —

[धीः के विगत अंकों में आर्यदेव विरचित चर्यामेलापकप्रदीप के 1 से 7 परिच्छेदों का संक्षेप में हिन्दी अनुवाद दिया गया था। इस अंक में अष्टम और नवम परिच्छेदों का अनुवाद प्रस्तुत है।]

अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातु

वज्रशिष्य—भगवन्! परमार्थसत्य के विषय में सन्देह दूर हो गया। अब कृपा करके यह बतायें कि परमार्थसत्य में प्रवेश करने के बाद निःस्वभाव होकर सत्त्व का व्युत्थान कैसे होता है? वह कौन है, जो आत्म-सुख का अनुभव करता है? वह कौन है, जो अवैवर्तिक हो जाता है? मोक्ष का क्या अर्थ है और वह किससे मुक्त होता है?

वज्रगुरु—हे महासत्त्व! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। जो तथागतसम्प्रदाय से बहिर्मुख होते हैं, वे प्रभास्वर से व्युत्थानक्रम को नहीं समझा पाते हैं। अतः **गुह्यसमाज-महातन्त्र** के अनुसार मैं तुम्हें समझाता हूँ, एकाग्रचित्त से सुनो।

इस वज्रयान में उत्पत्तिक्रम से आठवीं भूमि को प्राप्त कर बार-बार सुगत से उपपन्न निष्पन्नक्रम को सत्त्व जब तक प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक बराबर कल्याणमित्र की आराधना करता रहता है। काय-वाक्-चित्त के विवेक से अधिगत होने पर ही दसवीं भूमि को पाकर मायोपम समाधि का अधिकारी होता है। मायोपम समाधि का अधिगम करके आभासविशुद्धि को प्राप्त करता है। तब निराभास होकर युगनद्धवाहि क्रम से बुद्धकाय का साक्षात्कार करके वज्रोपमसमाधि द्वारा सब गुणों से अलंकृत होकर विहार करता है। जैसा कि भगवान् ने **लङ्कावतारसूत्र** में कहा है—

"महाकरुणा और उपायकौशल्यों के अनाभोगगत प्रयोग से, सर्वसत्त्वधातु मायाप्रतिबिम्ब के समान होने से, विषयों से विरक्त होने से, चित्त में बाह्य पदार्थों के प्रदर्शन से, बिना किसी निमित्त के स्थित ज्ञात क्रमशः भूमियों की समाधि का अनुगमन करने से,

त्रैधातुक स्वचित्त की मायाधिमुक्ति से प्रतीत होती हुई मायोपम समाधि को प्राप्त करते हैं। स्वचित्त के निराभास मात्र हो जाने से प्रज्ञापारमिताविहार को प्राप्त उत्पादक्रियायोग से रहित वज्रबिम्बोपम समाधि को तथागतकाय के अनुसार प्राप्त करते हैं। तथता के निर्माणानुगत बल, अभिज्ञा, वशिता, करुणा और उपाय से मण्डित सम्पूर्ण बुद्ध क्षेत्रों, तीर्थों, आयतनों में लगे हुए मनोविज्ञान से रहित चित्त को वहाँ से लौटाकर अनुश्रुतिपूर्वक तथागतकाय को वे बोधिसत्त्व प्राप्त करते हैं। इसलिए हे महामते! तथागतकाय का अनुगमन करने से लाभ चाहने वाले बोधिसत्त्व महासत्त्वों को स्कन्धधात्वायतन चित्त के हेतु, प्रत्यय, क्रियायोग, उत्पादन, स्थिति, नाश, विकल्प और प्रपञ्च से रहित हो जाना चाहिए तथा केवल उस निराभास चित्त का अनुसरण करना चाहिए।''

मायोपम समाधि को प्राप्त करने पर भी जबतक परमार्थसत्य का अभिगमन नहीं कर लेता तब तक अवैवर्तिक ही रहता है। क्योंकि जब तक आभासत्रय की विशुद्धि नहीं होती, तब तक विज्ञान संकल्प रहेगा ही, जब तक संकल्प रहेगा, तब तक क्लेश वासनाएँ भी रहेंगी, जब तक क्लेश वासनाएँ रहेंगी तब तक पुनर्जन्म भी होता रहेगा। इसलिए सब प्रकार की चित्तता से रहित होना ही उसकी विशुद्धि है। जैसा कि **परमाद्यमहायोगतन्त्र** में कहा है—

''जो रागविशुद्धि पद है, वही बोधिसत्त्व पद है। जो द्वेषविशुद्धि पद है, वही बोधिसत्त्व पद है। जो मोहविशुद्धि पद है, वही बोधिसत्त्व पद है।''

कम्बलाचार्यपाद ने भी **अध्यात्मसाधनोपायिका** में कहा है—

''जो स्थूल है, वह शब्दमय है, जो सूक्ष्म है, वह चित्तामय (चित्तस्वरूप) है, जो इस चित्ता से रहित है, वही योगियों का परम पद है।''

इस नियम के अनुसार अभिसम्बोधिक्रम से जिसने प्रभास्वर पद को प्राप्त कर लिया है, उसके काय-वाक्-चित्त निर्मल और शून्य स्वभाव होने से विज्ञान त्रय की विशुद्धि हो जाती है तथा प्रज्ञापारमिता स्वरूप होने से उसमें न तो चित्ता (चेतनता) रहती है न तूष्णींभाव ही। इसलिए ऐसा व्यक्ति निर्वाण धातु रूप रहित होता है। उसे कोई स्पर्श नहीं कर सकता। जन्म और कर्म से विनिर्मुक्त हुआ वह सूर्य, चन्द्र, अग्नि और मणि की प्रभा के समान केवल प्रकाशमान रहता है। उससे तामरसाभास आलोक की उपलब्धि होती है। आलोकोपलब्धि से स्वच्छ सूर्य किरणों के आभास की तरह ऊष्ण स्वभाव वाले

आलोकाभास का उदय होता है। उससे स्वच्छ चन्द्र किरणों की तरह शीतल स्वभाव से व्याप्त प्रज्ञाज्ञान का उदय होता है।

परमाद्यतन्त्र में भी कहा है—

"आकाश से आकाश उत्पन्न होता है और सब आकाश मिलकर अन्त में महाकाश कहलाता है।"

इसलिए चतुःशून्य (शून्य, महाशून्य, अतिशून्य और सर्वशून्य) का एकत्रित यह आलोकपुञ्ज खद्योतकाकार (आकाश को प्रकाशित करता हुआ) सम्पूर्ण लोकधातु को आभासित करता हुआ, सूक्ष्म धातु सहित, छायाकार, अच्छेद्य, अभेद्य, वज्रकाय स्वभाव, अच्युत, अनास्रव, सर्वक्लेशवासना विनिर्मुक्त, इच्छावशित्व प्राप्त, जल से निकली हुई मछली की तरह, निद्रा के बाद जगे हुए प्राणी की तरह, परमानन्द मूर्ति स्वरूप निष्पन्न होता है, जो नाम-रूपात्मक वज्रधर है। संसार के बन्धन से विनिर्मुक्त होने के कारण मोक्ष कहलाता है। इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए **श्रीगुह्यसिद्धि** में कहा है—

"वह तत्त्व स्वसंवेद्य (अपने से ही जानने योग्य) है। दूसरों के लिए उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भक्तिभावना से ही उसे जाना जाता है अन्यथा नहीं।"

उस तत्त्व को जानकर उससे रातदिन भक्तिभाव करना चाहिए तभी उस परमनिर्वाण शान्त अनुत्तरपद में उस भक्ति के बल से भावनाबल का निर्माण होता है और उससे एक विलक्षण आनन्द देने वाला रूप उत्पन्न होता है।

जो इस आकार से उत्पन्न, स्फरण और संहार करनेवाला, भूः भुवः स्वः रूप सम्पूर्ण चराचर को प्रकाशित करने वाला है।

भावनाबल के सामर्थ्य से वह प्रज्ञोपायात्मक, शिव (कल्याणकारक), सम्पूर्ण क्लेशों से विनिर्मुक्त, सभी लक्षणों से विभूषित, शून्यताज्ञान से युक्त, निर्द्वन्द्व, परमपद, सर्वाकारवरोपेत, ग्राह्यग्राहकवर्जित, मायोपम, शुद्ध, स्वच्छ, स्वभावतः निर्मल, शब्द गन्ध रस और स्पर्श से रहित, छायामायोपम, दिव्य स्वरूप, दिव्यसंस्थान में स्थित एकमात्र ज्ञानचक्षुओं द्वारा केवल समाधि में दिखाई देता है।

चमकती हुई ज्ञानतरङ्गों की मालाओं से अनेक प्रकार के स्वरूपों वाले इन्द्रधनुष के समान इस काय को तत्त्व की भावना करनेवाले ही प्राप्त कर सकते हैं।

भावनायोग के सामर्थ्य से और समयों का उचित रूप से पालन करने से ही ऐसा रूप प्राप्त हो सकता है, जिसका वर्णन स्वयं जिन भी नहीं कर सकते।

जहाँ न काय है, न वाक् है, न चित्त है, जो सर्वव्यापी परम स्थान है, उसमें ही सम्प्रदायानुसार इस रूप की भावना की जा सकती है।

अत्यन्त आश्चर्यकारक, अत्यन्त शान्त और अतीन्द्रिय, परम गम्भीर यह बुद्धपद ही सर्वश्रेष्ठ है। (गु० सि० 3.71-82)

इसी व्युत्थानक्रम को **गुह्यसमाजयोगतन्त्र** में इस प्रकार कहा है—

''वह वज्र धन्य है और धन्य है उस वज्र की देशना जिसमें न काय है, न वाक् है, न चित्त है फिर भी वहाँ रूप की प्रतीति होती है।''

भट्टारकपाद ने भी कहा है—

''आपके काय में सौषिर्य (रिक्तता=नाक, कान, मुख आदि छिद्रों वाली इन्द्रियाँ) भी नहीं है, मांस, हड्डी और रक्त भी नहीं है फिर भी आकाश में इन्द्रधनुष जैसे इस रूप को दिखा रहे हैं। आपके इस काय में न कोई रोग होता है, न अशुचिता है, न भूख-प्यास लगती है, केवल लोक के अनुवर्तन के लिए इस लौकिक क्रिया को दर्शाते हैं।''

(पञ्चक्रम 3.2, 3)

सर्वकल्पसमुच्चय में भी कहा है—

''हृदय को शुद्ध करके, वज्रदेह की भावना करके ही उन्होंने दृढ़, सारवान् और कभी क्षीण न होनेवाले वज्रकाय को प्राप्त किया है।''

समाधिराजसूत्र में भी चन्द्रप्रभकुमार ने तथागतकाय का वर्णन किया है—

''खसमा (आकाश की तरह शून्य), विरजा (निष्कलङ्क), श्रेष्ठ रूप को धारण की हुई, बिना किसी विग्रह की, जिसका कोई लक्षण स्वरूप नहीं ऐसी, प्रज्ञसुता, अत्यन्त गम्भीर गुणों के समुद्र के समान, करुणामयी, अनुप्रभा हे तथागतकाय! तुम अपना हाथ मेरे मस्तक पर रखो अर्थात् मुझे आशीर्वाद दो।'' (स० रा० सू०, पृ० 313)

आर्या अष्टसाहस्त्रिका में भी कहा है—

"निर्वाण को भी मैं स्वप्नोपम या मायोपम ही कहता हूँ। यदि निर्वाण से अन्य कोई विशिष्ट धर्म भी हो तो उसे भी मैं मायोपम या स्वप्नोपम ही कहूँगा।"

(आ० सा० प्र० पा०, पृ० 20)

अब उसी (काय) के विशेषण बताते हैं—वह न रूप है, न अरूप है। न सत्य है, न असत्य है। न भाव है, न अभाव है। न उच्छेद है, न शाश्वत। न साकार है, न निराकार। न धर्म है, न अधर्म। न संक्लेश है, न व्यवदान। न संसार है, न निर्वाण। न नित्य है, न अनित्य। न आत्मा है, न अनात्मा। न आन्तर है, न बाह्य। न लौकिक है, न लोकोत्तर। न द्वय है, न अद्वय।

इस युगनद्धात्मक परिनिष्पन्न वज्रकाय के कुछ नाम पर्याय बताते हैं, जैसे—महाविद्यापुरुषमूर्ति, सत्यद्वयनय में स्थित, प्रकृतिप्रभास्वरात्मक, प्रज्ञोपायात्मक, त्रिलोकात्मक, त्रिकालात्मक, त्रिनयात्मक, त्रिमण्डलात्मक, सर्वकुलात्मक, सत्पुरुष, अग्रपुरुष, महापुरुष, पुरुषनाग, पुरुषशूर, पुरुषवीर, पुरुषदम्य, पुरुषदमक, पुरुषोत्तम, पुरुषसारथि, पुरुषसिंह, आकाशपुरुष, सर्वात्मक पुरुष, शुद्धात्मक पुरुष।

इसी प्रकार उसे तीर्थपारग, स्थलगत, क्षेमप्राप्त, उत्क्षिप्त, परिघमर्जितकण्टक, निष्प्रपञ्च, भिक्षु, अर्हन्, क्षीणास्रव, निष्किञ्चन, श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, बुद्धपुत्र, निष्क्लेश, वशीभूत, सुविमुक्तचित्त, सुविमुक्तप्रज्ञ, आजानेय, महानाग, कृतकृत्य, कृतकरणीय, अपहृतभार, अनुप्राप्तस्वकार्थ, परिक्षीणभव, सयोजन, सम्यग़ाज्ञा, सुविमुक्तचित्त, सर्व-चेतोवशी, परमपारमिता प्राप्त, संसारपारकोटिस्थ, ज्ञानमूर्ति और स्वयम्भू भी कहा जाता है।

इसी वज्रोपम समाधि की प्रशंसा करते हुए भगवान् ने **शूरङ्गमसूत्र** में कहा है—

"वे ही सत्पुरुष बुद्ध-विषय के अनुयायी हैं, जिन्होंने स्वज्ञानवशवर्ती होकर इस शूरङ्गम समाधि को प्राप्त किया है। मैं उसे बोधिसत्त्व नहीं कहता, जिसने इस समाधि को प्राप्त नहीं किया। मैं उस बोधिसत्त्व को अभिज्ञाप्राप्त भी नहीं मानता, जिसने इसे नहीं प्राप्त किया। मैं उस बोधिसत्त्व को विशुद्धिकर भी नहीं कहूँगा, जो इसे नहीं प्राप्त कर सका। मैं उस बोधिसत्त्व को दान शील क्षान्ति वीर्य ध्यान प्रज्ञासम्पन्न भी नहीं कहूँगा, जिसने इसे प्राप्त नहीं किया। मैं उस बोधिसत्त्व को बहुश्रुत और प्रज्ञासम्पन्न भी नहीं समझता, जिसने इस शूरङ्गमसमाधि को प्राप्त नहीं किया।"

इसलिए हे कुलपुत्र समग्र निर्वाण मार्ग में निकलने की कामना वाले महासत्त्व को शूरङ्गमसमाधि की शिक्षा अवश्य लेनी चाहिए।

धर्मोदयाभिसम्बोधिप्रपञ्चता

वज्रशिष्य—श्रुतचिन्तामय सकलक्रमतत्त्वाधिगम परिच्छेद का गुरु द्वारा आदेश पाकर सर्वज्ञपद की कामना करने वाले योगी को कैसे रहना चाहिए, कैसे भावना करनी चाहिए और कैसे व्रतचर्यादि का आचरण करना चाहिए, शास्ता वज्रगुरु इसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

वज्रगुरु—हे महासत्त्व! विशेष कारण से जिनका वीर्य उत्तप्त हो जाता है और वे काय तथा जीवन से निरपेक्ष होकर इसी जन्म में स्वरूपपरावृत्ति द्वारा अष्टैश्वर्य फल प्राप्त करना चाहते हैं, उनके कल्याण के लिए तुमने अच्छा प्रश्न पूछा है। सुनो, सब प्रकार की भावनाओं को त्याग कर केवल मोक्ष की कामना करनेवालों के लिए भावनाविशुद्धि और चर्याविशुद्धि को क्रमशः बताता हूँ।

जब दो (संवृति और परमार्थ) सत्यों का अद्वय हो जाने पर हेतु और फल का भी अद्वय हो जाता है, हेतु-फल का अद्वय होने पर प्राप्य-प्रापक का भी अद्वय हो जाता है, प्राप्य-प्रापक का अद्वय होने पर भाव्य-भावक का भी अद्वय हो जाता है, तब साध्य साधन और साधक भी नहीं रह जाते। जब साधक साध्य और साधन ही नहीं रहेंगे तो कौन किसकी भावना करेगा, कौन चर्या करेगा और क्यों? कहा भी है—"जब वास्तविक धर्म (तत्त्व) का ज्ञान हो गया तो निर्वाण की कृतकृत्यता हो गई। फिर भी अवस्थाभेद से हेतु और फल लोक में देखे जाते हैं। अन्यथा अहेतुक दोष हो जाएगा। ऐसी स्थिति में भावक भावना और भाव्य अथवा साधक साधना और साध्य चर्या भी होती रहेगी, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ संवृतिसत्य साधक होता है परमार्थसत्य साधन और इससे हुआ अद्वयज्ञान साध्य। अतः हेतुफल के अद्वैधीकार का परिज्ञान ही भावना होती है।

जैसाकि **सर्वरहस्यतन्त्र** में कहा है—

"फल से हेतु का और हेतु से फल का मुद्रण करके विभावना करनी चाहिए। अन्यथा करोड़ कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती।" (द्र०-गु० स० 18.78)

चर्याविशुद्धि को दर्शाते हुए कहा है—अद्वयज्ञान हो जाने पर समाहित और असमाहित इन दोनों अवस्थाओं का भी अद्वय हो जाता है। इस स्थिति में कौन चर्या

करेगा? जैसे कर्ता के अभाव में क्रिया का भी अभाव हो जाता है, ऐसा लोक में देखा जाता है अथवा व्रतचर्या के बिना अनादि क्लेश वासनाओं का क्षय नहीं हो सकता, ऐसा देशना पाठों में कहा है और लोक में भी प्रसिद्ध है।

जैसाकि **गुह्यसमाज** में कहा है—"वज्रसत्त्व को बार-बार प्रेरित करना चाहिए" (गु० स० 14.40) और **गुह्यसिद्धि** में भी कहा है—

"पादप्रसारिकों (आठ प्रकार के पर्यवस्थानभेदों) से मुक्त होकर, संसार पिटारे को छोड़कर, प्रयत्नपूर्वक कौकृत्य (पश्चात्ताप), स्त्यान (आलस्य) आदि का त्याग कर नित्य उत्साह पूर्ण मन से श्रेष्ठवज्रसत्त्व की साधना करनी चाहिए। अन्यथा करोड़ों कल्पों में भी सिद्धि नहीं होती है।" (गु० सि० 6.2-3)

इसलिए अनिमित्त समाधि से युक्त होकर अनादि क्लेशवासना को त्याग कर अनाभोग फल के आह्वान की कामना करते हुए, चर्या करूँ या न करूँ ऐसा सन्देह न करके अष्ट लोकधर्मों का तिरस्कार करके यथावत् योगचर्या करनी चाहिए। अत: इसी व्रतचर्या को गुरुचरणों की कृपा से मैंने जैसा समझा है वही व्याख्या करता हूँ।

भगवान् ने पहले उत्कृष्ट बोधिसत्त्वावस्था में द्वीपों का अवलोकन करके तुषित भुवन से उतर कर सन्तानादि चार प्रकार के नय को दर्शाते हुए वीतराग रूप का अभिनिर्माण कर हीनाधिमुक्तिक सत्त्वों के लिए चार आर्यसत्यों और विरागचर्या का प्रतिपादन किया। फिर महायान में अभिनिविष्ट सत्त्वों के लिए अष्टविज्ञान कायादिधर्म नैरात्माधिगम और भूमि पारमितादि चर्या का प्रतिपादन किया। फिर चक्रवर्तिरूप का अभिनिर्माण करके गम्भीराधिमुक्तिक सत्त्वों के लिए राग द्वारा सत्यद्वय के ज्ञान हेतु रागधर्मचर्या का प्रतिपादन किया। इसीलिए सत्यद्वय के स्वरूप को चाहने वाले, सकलपदार्थों का परिच्छेद करनेवाले, परममहासुखफल को ढूंढने वाले श्रावक सौत्रान्तिकों के लिए कुछ नहीं कहा। क्योंकि श्रावकादि हीनाधिमुक्तिक तर्कवितर्क द्वारा आत्मसाधना से रहित, दान शील आदि कर्ममार्ग में आरूढ होकर तत्त्वज्ञान में श्रद्धा नहीं रखते, इसी से मोक्ष से दूर रहते हैं। वे सुखोपाय को न जानकर बारह धूतगुणादि कठोर चर्याओं को करते हुए दीर्घकाल तक बोधि को ढूंढते रहते हैं फिर भी नहीं पाते। क्योंकि वे निष्पन्नक्रम का अधिगम नहीं किये रहते। इसीलिए **भगवान्** ने कहा है—

"जो लोग भिक्षुभाव में स्थित हैं, जो विविध प्रकार के तर्कों में लगे हैं और जो वृद्ध होने से अशक्त हैं, उन्हें तत्त्व की देशना नहीं देनी चाहिए।"

इसीलिए **वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्र** में भी कहा है—

''हे महावीर! श्रावकों के लिए उपायरहित ज्ञान और शिक्षा की देशना दी गई है उसी को उन्हें समझाओ।'' **मूलसूत्र** में भी कहा है—

''जो ज्ञानवर्जित हैं वे दश कुशल कर्ममार्गों को चाहते हैं।'' इसीलिए **भगवान्** ने भी कहा है—

''हे भिक्षुओ! श्रावकयान के चक्कर में मत पड़ो बोधिचर्या का आचरण करो। बोधिचर्या का आचरण करते हुए तुम स्वयं बुद्ध हो जाओगे।

जैसे विशिष्ट कारण से विशिष्ट ही कार्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार रूपादि भी विषयभोगभाव को प्राप्त होते हुए विशिष्ट फल दायक होते हैं, ऐसा समझना चाहिए। अन्यथा पाँचों इन्द्रियों का निग्रह होने से दुष्कर चर्याओं में लगे हुए चित्त में एकाग्रता नहीं होती। जैसाकि **परमाद्यमहायोगतन्त्र** में कहा है—

''दुष्कर और तीक्ष्ण नियमों का आचरण करने वाला सिद्धि को नहीं प्राप्त कर पाता, किन्तु सर्वकामोपभोग करता हुआ शीघ्र सिद्धि पा लेता हैं।'' (गु० स० 7.3)

वज्रशिष्य—''राग, द्वेष और मोह ये तीन लोक में विष के समान हैं'' ऐसा कहा गया है। रूपादि विषय क्लेश उत्पन्न करने वाले होने से सिद्धि में विघ्नकारक होते हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है। फिर उनका सेवन करने से शीघ्र सिद्धि होती है, यह तो परस्पर विरुद्ध बात हो गई?

वज्रगुरु—हे महाभाग तुम ठीक कहते हो रागजन्य चर्या पर तुम्हें जो शंका है, उसका परिहार सुनो। रागादि क्लेश उन श्रावकादियों के लिए विघ्नकारक होते हैं, जो उन्हें क्लेशदृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उन्हें क्लेश-स्वभाव का ज्ञान नहीं होता, वे ही क्लेश-स्वभाव का ज्ञान होने से बोधिप्राप्ति के कारण बन जाते हैं, ऐसा भगवान् ने **सूत्रक** में कहा है। जैसाकि **परमाद्यमहायोगतन्त्र** में कहा है—

''राग, द्वेष और मोह ये तीनों विष के समान हैं। यदि इनका सेवन विषम रूप में (अनुचित ढंग से) किया जाता है तो ये विष हो जाते हैं अर्थात् नष्ट कर देते हैं। यदि इनका सेवन सम (उचित) रूप में किया जाय तो ये अमृत हो जाते हैं।'' **रत्नकूटसूत्र** में भी कहा है—

"हे काश्यप! गन्ने के खेत में, अन्न या अंगूर के खेत में यदि संकरकूट (सड़ी हुई खाद) डाला जाय तो वह उसके लिए उपकारक ही होता है, ऐसे ही बोधिसत्त्व के लिए क्लेश भी उपकारक ही होते हैं। हे काश्यप! जैसे मन्त्र और औषधि के साथ सेवन किया गया विष मनुष्य को मारता नहीं वैसे ही प्रज्ञा और उपाय से युक्त बोधिसत्त्व को क्लेश नष्ट नहीं कर सकते।" इसीलिए **विनयामोघसिद्धिमहातन्त्र** में कहा है—

"जड़ व्यक्ति जिससे बन्धन को प्राप्त होता है उसी से विद्वान् व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है। बोधि की भावना से यह सब वैपरीत्य देखा जाता है। जिन कारणों से मूर्ख लोग बन्धन को प्राप्त होकर रौरवादि नरकों का भोग करते हैं उन्हीं कारणों से अपने प्रज्ञाबल द्वारा विद्वान् मुक्त हो जाते हैं।"

इसी न्याय के अनुसार विशेष परिणामना से विशेष फल की प्राप्ति हेतु भाव को प्राप्त व्यक्ति के लिए अनुत्तर महासुखप्राप्ति का दूसरा कोई साधन नहीं है। इसके लिए वे ही सुखाहारादि अष्टगुणैश्वर्यादि सर्वज्ञ सम्पत्ति को प्रस्तुत करते हैं। **श्रीसंवर** में कहा है—

"इसलिए सुख से ही सुखपूर्वक बुद्धत्त्व प्राप्त किया जा सकता है।"

यह रागजन्य बोधिचर्या तीन प्रकार की होती है—सप्रपञ्चता, निष्प्रपञ्चता तथा अत्यन्तनिष्प्रपञ्चता। अब सप्रपञ्चा बोधिचर्या क्या है? इसे सुनो, तथागत के एवं वज्रधर के आश्वासों (उपदेशों) में जो निर्देश दिये गये हैं उनका **सर्वतथागतारल्लि** (सर्वतथागत की लीलाएँ) में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यही प्रपञ्चता (सप्रपञ्चचर्या) है।

निष्प्रपञ्चता क्या है? निरन्तर कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी सांसारिक प्रपञ्चों में आसक्त न होकर केवल अरल्लि (भगवल्लीलाओं) में ही रत रहना निष्प्रपञ्चता है। अत्यन्त निष्प्रपञ्चता क्या है? सब कुछ छोड़कर केवल ध्यान, आहार-विहार का ज्ञानमुद्रा समापत्ति से अभ्यास करे, यही अत्यन्त निष्प्रपञ्चता है। जैसे लकड़ी भी जलने पर राख हो जाती है, ताड़पत्र रुई आदि सभी अन्य पदार्थ भी जलने पर राख ही होते हैं, ऐसे ही उपर्युक्त तीनों प्रकार की चर्याओं से महामुद्रापद की ही प्राप्ति होती है।

अथवा कोई साधक **तत्त्वसंग्रह** आदि तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार आचरण करते हुए हस्तमुद्रा, गीत, उपहार, अभिनय, नट, नर्तकादि प्रयोगों द्वारा रातदिन महामुद्रा की सिद्धि में लगे रहते हैं। कोई **परमाद्यादिमहायोगतन्त्र** के अनुसार पर्यङ्क आसनबन्ध, शृंगारादि नौ नाट्य रसों का आनन्द लेते हुए सर्वतथागत की क्रीड़ा प्रपञ्चचर्या से महासुखपद की कामना

करते हैं। इस गुह्यसमाज में तो केवल निष्प्रपञ्चता और अत्यन्त निष्प्रपञ्चता चर्या का ही निर्देश किया गया है। अब यहाँ **सर्वबुद्धसमागमयोगडाकिनीजालसंवरमहायोगतन्त्र** के अनुसार सप्रपञ्चचर्या का वर्णन करते हैं—

"अब मैं सबसे श्रेष्ठ सर्वबुद्धसमायोगडाकिनीजालसंवर का वर्णन करूँगा। यह सर्वबुद्धमय श्रीमान् वज्रसत्त्व सदा परमरमणीय एकान्त स्थान में सुखपूर्वक रहते हैं। तथागत का यह स्थान बहुमूल्य दिव्य रत्नसमूहों से तथा घण्टा, उज्ज्वल वितान, ध्वज आदि से सजा रहता है। वज्रगीति और पूजा की सामग्री—वाद्य, वादन, पुष्प, धूप, दीप आदि—यथा स्थान रखी रहती हैं। इस प्रकार भवन अथवा उद्यान आदि में सर्वबुद्धसमायोग डाकिनीजालसंवर को सजाते हैं। वहाँ पर पहले कोमल आसन को बिछावें क्योंकि विश्वपद्म पर से बना यह आसन ही सर्वशुद्ध आसन कहलाता है। सर्वबुद्धसमायोग और योगेश्वर को प्रसन्न करनेवाला यह आसन होता है, जिससे वज्रसत्त्व प्रसन्न होते हैं। सम्पूर्ण धातु की बनी अथवा काष्ठादि से बनी चिह्नमुद्रा को अच्छी प्रकार रंग आदि से चित्रित कर अधिदेवता के सामने रखे, उन आसनों पर उन्हें यथास्थान स्थापित कर चार कोणों, चार द्वारों और चार तोरणों पर द्वारपालों को रखे, इसके बाद अपने अधिदेवता के सम्मुख अच्छी प्रकार सजी हुई आत्ममुद्रा के चिह्नों से पूर्ण मुद्रा (स्त्री) को रखकर गणमण्डल की कल्पना करे।"

इन सूत्रों के अर्थ की विस्तार से व्याख्या करता हूँ—

पहले मनोनुकूल उद्यानादि एकान्त स्थान में, जहाँ विपरीतनय वाले अभागे न हों, ईंटों से तीन मंजिल वाले सुन्दर आकार के देवगृह का निर्माण करे। उसकी पहली मंजिल में रसोईघर दूसरी मंजिल में वीणा आदि गीतवाद्य की तथा पुष्पादि पूजा की सामग्री रखे और तीसरी मंजिल में योगिनियों के साथ विहार करते हुए सौभाग्यशाली श्रीविश्व को रखे अथवा एक ही मंजिल वाले गृह में परिखादि से बने नानालंकारों से युक्त भूभाग में स्फटिक, वैडूर्य, इन्द्रनील, मरकत के रंगों वाले महामेरुवज्रशिखर कूटागार की भावना कर चार कोणों वाले, चार द्वारों, चार तोरणों (बहिर्द्वारों) से मण्डित, चारसूत्रों आठ खम्भों से सुशोभित, हारार्द्धहारों से जड़ित पट्टवस्त्रों तथा मालाओं से सजाये हुए, घण्टा पताका ध्वज चँवर आदि से विभूषित, द्वारों के जोड़ों पर अर्धचन्द्र या वज्रकोण बनाकर पक्षिणी तथा क्रमशीर्ष आदि को रंगीन वस्त्रों से सजावे।

ऐसे भवन में गुरुओं से आज्ञा लेकर निष्पन्न और अनिष्पन्न योगीश्वरों की पूजा करके, जिन्होंने अपने प्राकृताहंकार को छोड़ दिया है, ऐसी अपनी प्रिय सहचरियों के साथ

निःशंक होकर सिंह की तरह निर्भय साधक महामुद्रासाधन के लिए प्रवेश करे। साधन का क्रम इस प्रकार है—

परमार्थसत्य का अवलम्बन कर स्वाधिष्ठानक्रम से अपने को वज्रसत्त्व स्वरूप मानकर मण्डलाधिपति रूप से बैठकर वह रूप-विषय का अनुभव करता है। उसके बाद सर्वतथागत स्त्रीमायाकार प्रदर्शन के लिए बाहर से कोई रागसन्तति स्वभाव वाली संवरमाया रूप से भगवान् के सामने खड़ी होती है। कोई सुरतसन्तति स्वभाव वाली अत्यन्त सुख रूप में दक्षिण दिशा में, कोई रौद्र सन्तति स्वभाव वाली दीपक के रूप में पश्चिम दिशा में, कोई जीवसन्तति स्वभाववाली शिष्याकार से उत्तर दिशा में स्थित होती है।

इनकी सहचरियाँ कोई बुद्धबोधि के रूप में मोह विशोधन के लिए आग्नेय कोण में, कोई धर्मचक्र के रूप में त्रिभुवन दान के मदविशोधन के लिए नैर्ऋत्य कोण में, कोई द्वेषापनयन के लिए वायव्य कोण में, कोई कामलता रूप से रागान्धकार निवारण के लिए ईशान कोण में, कोई सुषिर (वाद्य) के रूप में आग्नेय कोण के बाहर, कोई नृत्याकार रूप से शृंगारवीणा बजाती हुई त्रिभुवन को वश में करती नैर्ऋत्य कोण के बाहर, कोई हाथ फैलाकर मुकुन्द (पखावज) बजाकर विषजन्य ज्वर को दूर करने के लिए वायव्य कोण के बाहर, कोई घन (वाद्यविशेष) रूप में मुरज (मृदङ्ग) बजाती हुई ईशान कोण के बाहर स्थित है।

कोई वज्रपुष्प रूप में हाथ में फूल लेकर आग्नेय कोण की बाह्यपट्टिका में, कोई वज्रधूप रूप में हाथ में धूपदानी लेकर नैर्ऋत्य की बाह्यपट्टिका में, कोई वज्रालोकरूप से, हाथ में विशाल दीप लेकर वायव्य की बाह्यपट्टिका में, कोई वज्रगन्ध रूप में गन्ध से भरी शंख लेकर ईशान की बाह्यपट्टिका में स्थित है।

कोई घोड़े के रूप में परमाश्व के मुख से निकले उच्छ्वास से त्रिभुवन को सोखती हुई पूर्वद्वार की रक्षा में स्थित है। कोई वज्रमुखी रूप से त्रिभुवन का संहार करती हुई दक्षिण द्वार में स्थित है। कोई वज्रालोकाकार में त्रिभुवन का निरीक्षण करती हुई पश्चिम द्वार में स्थित है और कोई महाप्रलय वेताली के रूप में भूः भुवः स्वः स्वरूप श्वासों से अपने भस्म को भी जीवित करती हुई उत्तर द्वार की रक्षा में स्थित है।

तब वहाँ भगवान् महासुख चक्रवर्ती भूतनयात्मक समाधि का स्मरण करके 'स्वकायमण्डलस्थित सर्वतथागतों को तृप्त कर रहा हूँ' ऐसे विशिष्ट अहंकार को उत्पन्न करके पहले रूपादि विविध विषयों का आस्वादन करते हैं।

उसके बाद शोधनादि विविध प्रकार से सर्वाकार का अभिसंस्कार करके प्रकृतिसिद्ध अध्यात्मकुण्ड का अनुस्मरण करते हुए 'समाधिसत्त्व के मुख की त्रिशिखाग्नि में आहुति दे रहा हूँ', ऐसे अहंकार को उत्पन्न करके अभ्यवहार करते हैं।

इसके बाद सुख से समय बिताते हैं और अमर हो जाते हैं। इस प्रकार साधक भक्ष्य, भोज्य, पेय आदि से कायवज्र को तृप्त करके अन्त में पाँचवें स्पर्शविषय का आस्वाद लेते हैं। इसी क्रम से सहचरी आदि देवीसमूह को अपने प्रति अनुराग युक्त जानकर इच्छानुसार अभीष्ट मुद्रा को गोद में लेकर "अब मैं मुद्रासिद्धि को निष्पन्न करता हूँ", ऐसी दृढ़ इच्छा करके आलिङ्गन, चुम्बन, चूषण, नखाघात, सीत्कार, कोकिलभृंगनाद (कूं कूं आदि शब्द), नाड़ी संचोदन आदि करके तथागत पर्यङ्क, वज्रपर्यङ्क, रत्नपर्यङ्क, पद्मपर्यङ्क, कर्मपर्यङ्कादि रतिबन्धों द्वारा कर्म में प्रवृत्त होता है। तब वे दोनों (साधक और मुद्रा) वज्र और पद्म (लिंग और भग) के जाग्रत् हो जाने पर प्रज्ञोपायसमापत्ति द्वारा स्कन्धादि स्वभाव वाले सर्वतथागतों को मस्तक से लेकर 72 हजार नाड़ियों से निकलती हुई आलिकालि की अमृतधारा से द्रवित करके राग, विराग और मध्यराग क्रम से प्रयत्नपूर्वक प्रज्ञापारमिता स्वरूप प्रत्यात्मवेद्य कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीमहासुखसमाधि का अभ्यास करके उत्कर्ष को प्राप्त हुआ योगी उसी गणमण्डल में निग्रह और अनुग्रह द्वारा सत्त्वों का परिपाक करता है। कुछ लोग जो शून्यता में अभिनिवेश करते हैं उन्हें वह भगवान् श्रीमहासुखवैरोचन रूप से महाशान्तिक समाधि द्वारा 'न शून्य है, न अशून्य है' इस अप्रतिष्ठित निर्वाण स्वरूप का प्रतिपादन कर उनकी शून्यतादृष्टि का निग्रह करता है। इसी प्रकार जो अत्यन्त रौद्र दुर्विनीत होते हैं श्रीवज्रहेरुकक्रोधसमाधि द्वारा उनकी कुत्सित दृष्टि का निग्रह करके उन पर अनुग्रह करता है। मिथ्यादृष्टि वालों के लिए पद्मनर्तेश्वर रूप से परमार्थसत्य का प्रतिपादन कर उन्हें वश में करता है। अत्यन्त हीन और मात्सर्य से घिरे लोगों के लिए श्रीवज्रसूर्य रूप से महापौष्टिक समाधि द्वारा सब प्रकार से धन रत्न आदि की वर्षा करके उनकी क्लेशदृष्टि का निग्रह करता है। अत्यन्त हीनवीर्य वालों के लिए परमाश्वरूप से हठयोगसमाधि द्वारा पराक्रम से हीनवीर्य का निग्रह करता है। वहाँ भगवान् श्रीमहासुख अपनी लीलाओं के स्वभाव का प्रदर्शन करने के लिए एकाग्रचित्त से परस्पर एक-दूसरे की प्रसन्नता के लिए बुद्धनाट्य करता है।

इस क्रम से मुद्रा-प्रतिमुद्रा, वन्दन-प्रतिवन्दन, पूजा-प्रतिपूजा, नाटक-प्रतिनाटक, गीत-प्रतिगीत आदि उन दोनों का वाक्छोमा और कायछोमा के संकेत से होता है। वाक्छोमा (वाणी द्वारा संकेत) इस प्रकार होता है—

'ॐ अति होः'—इसका तात्पर्य है प्रणाम करता हूँ। 'ॐ प्रतिका'—इसका अर्थ है प्रणाम के उत्तर में प्रणाम करता हूँ। इसी प्रकार 'च्छे च्छे' का अर्थ है आचार्य की वन्दना। 'भक्ष' का अर्थ है प्रवेश करो। 'च्छे'=स्वागत करना, 'च्छें'=अवरोध करना। 'खं'=खाओ। 'खः'=और खाओ। 'द्रं द्रं'=मांस। 'स्रं स्रं'=रक्त। 'द्रें द्रें'=मांसभक्षण। 'जं फं'=वज्रोदक। 'सोमं'=पञ्चामृत। 'इद्य'=मद्य। 'संवर'=जल। 'संवरी'=पीना। 'सुप्रियं'=पुष्प। 'सञ्चयं'=फल। 'जालकं'=वस्त्र। 'क्षं'=घर। 'क्षोण्णं'=अपना घर। 'कामदं'=मन्दिर। 'क्षेपणं'=मण्डल। 'बोधनः'=मण्डलाचार्य। 'उपायः'=शिष्य। 'मित्रं'=भ्राता। 'रंजिना'=स्त्री देवता। 'गोपिता'=वज्रयोगिनी। 'तत्पुरि'=डाकिनी। 'विक्लवा'=मातृकाएँ। 'स्वमुखः'= पितर। 'क'=योग्य (पुत्र)। 'प्रीं प्रीं'=पुत्री। 'बहुला'=अच्छे रूपवाली। 'लोटनं'= अगम्यागमन। 'बहरि'=भक्ष्य (पदार्थ)। 'धनु'=द्रव्य दो। 'शे शे'=जाओ। 'प्रे प्रे'=आओ। 'त्रं'=नहीं है। 'विहमः'=रूठा हुआ। 'च्छोरः'=मारना। 'जीवः'=रक्षा करना। 'नीरः'= विरक्त। 'ह्रि'=राग।

द्रवद्रव्य से क्रमशः पूजन करके 'सुरतस्त्वम्' कहने का अर्थ है अपने देवता का अनुस्मरण। 'सुरतोऽहम्' यह कहते हुए 'अनुरागयामि' यह प्रतिवचन वज्रसत्त्व की साधना में, 'अनुबोधयामि' यह प्रतिवचन वज्रवैरोचन की साधना में, 'अनुमोदयामि' यह प्रतिवचन हेरुकवज्र की साधना में, 'अनुरागयामि' यह प्रतिवचन पद्मनर्तेश्वर की साधना में, 'अनुमर्दयामि' यह प्रतिवचन परमाश्व की साधना में कहा जाता है। देवी की प्रतिपूजाओं में 'समयस्त्वम्' यह पाँच बार कहा जाता है। 'अपने देवता का स्मरणीय समय मैं हूँ' यह भी कथन है। यह श्रीवज्रसत्त्वगणमण्डल में गणपूजक वाक्छोमा का परिवर्तनक्रम है।

इसके बाद कायछोमा (शरीरक्रियाओं द्वारा प्रतिसन्देश) का निर्देश करते हैं—मस्तिष्क का स्पर्श करने का अर्थ है प्रणाम करना और ललाट स्पर्श का प्रतिप्रणाम (प्रणाम के उत्तर में प्रणाम) करना। दाहिनी भौंह मटकाने का अर्थ है कार्य की सिद्धि और बाईं भौंह से विजय की सूचना। बांयां नेत्र फड़काने से 'रूपवती नारी' और दाहिना नेत्र फड़काने से 'रूपवान् नर'। बांयें कान का स्पर्श करने से 'अच्छा हुआ' और दाहिने कान के स्पर्श से 'ठीक कहा'। दाहिने नासापुट का स्पर्श करने से 'धूप दो' और बांयां

नासापुट स्पर्श से 'गन्ध दो'। जिह्वा को दाहिनी ओर घुमाने से 'मांस दो' और बांईं ओर घुमाने से 'मद्य दो'। बांईं कोख के स्पर्श से 'अन्न दो' और दांईं कोख के स्पर्श से 'व्यञ्जन दो'। यही कायच्छोमा का परिवर्तनक्रम है।

इस प्रकार लौकिक वस्तुओं से ध्यान हटाकर मनोमय राज्य को छोड़कर सदा प्रसन्नचित्त से योगिनियों के साथ रमण करता हुआ राजा इन्द्रभूति जैसे स्कन्धमय कलेवर को छोड़कर वज्रकाय होकर पूरे अन्तःपुर के साथ अन्तर्धान हो गया और अष्टगुणैश्वर्य से युक्त होकर एक बुद्धक्षेत्र से दूसरे बुद्धक्षेत्र में विचरण कर रहा है। उसी प्रकार यह साधक भी विचरण करता है।

जैसाकि **मूलतन्त्र** में कहा है—

सेवा करती हुई इन देवियों का सुखपूर्वक उपभोग करता हुआ स्वाधिदैवत योग से स्वयं अपनी ही पूजा करे। इस अनुयोग के द्वारा सम्पूर्ण योगसुखों का आस्वादन करता हुआ अतियोग द्वारा सिद्धि को प्राप्त करता है। इस रसायन (अमरता) के सुख से साधक सर्वबुद्धरूप होकर श्रीवज्रसत्त्व के समान आयु, यौवन, आरोग्य आदि सभी कुछ प्राप्त करता है। वह सब बुद्धों की तरह वज्रकाय, अमोघ वाणी, विशाल और उदार चित्त, महान् उत्साह को प्राप्त करता है। वह सर्वबुद्धमहाराज, सर्वबुद्धक्षेत्रों का स्वामी, सब लोकों का अधिपति और सब रत्नों का ईश्वर होता है। उन सहचरियों से रमण करता हुआ यदि वह जन्म भी लेता है तो चक्रवर्ती रूप में प्रसिद्ध होता है।

अथवा जिसके पास इतना विभव नहीं है कि वह पूर्वोक्तक्रम से निरन्तर साधना कर सकता हो उसके लिए श्रीसंवर में निर्देश किया गया है कि वह मास में या वर्ष में एक दिन अधिष्ठानपूर्वक बुद्धनाट्य को अवश्य करे। खड़ा हुआ, बैठा हुआ, घूमता हुआ, हंसता हुआ या बोलता हुआ जहाँ कहीं जिस अवस्था में हो उसका अनुस्मरण करे। जिस-जिस इन्द्रियमार्ग का सेवन करे उसी स्वभाव के अनुसार असमाहित योग से उसे बुद्धमय ही समझे।

यह रागधर्ममय (रागजन्य भगवान् की क्रीड़ा का विस्तार) खसम (आकाश=शून्य के समान) अभेद्य या सागर के समान अथाह है। यहाँ तो शिष्यों को बोध कराने के लिए संक्षेपमात्र कहा है। इस रागदेशना का तो कई जन्मों तक वर्णन किया जा सकता है।

•

लुप्त बौद्ध वचन संग्रह

—बनारसी लाल—

[टीका ग्रन्थों के अभाव में अब लुप्त बौद्ध वचन बहुत कम प्राप्त होते हैं। इस अंक में तीन लघु ग्रन्थों सेकोद्देशटिप्पणी, सेकोद्देशपञ्जिका एवं आदिकर्मप्रदीप नामक ग्रन्थ से लुप्त वचनों को संगृहीत करके प्रस्तुत किया जा रहा है। आदिकर्मप्रदीप Indogaku Mikkyogaku Kenkyu नामक पत्रिका के Prof. Yoshi Miyasaka Feli. Vol. में जापान से सन् 1993 में प्रकाशित हुआ है। सेकोद्देशटिप्पणी का प्रकाशन Rivista Degli, Studio Orientali, LXX (1-2), में सन् 1996 में हुआ है तथा सेकोद्देशपञ्जिका का प्रकाशन Taisho Daigaku Sōgō Bukkyo-Kenkyojo Nenpo, 16, (1994) में हुआ है।]

आदिबुद्ध

[1]ककारात् कारणे शान्ते लकाराच्च लयोऽत्र वै ।
चकाराच्चलचित्तस्य ककारात् क्रमबन्धनात् ।।

गुर्वाराधन

[2]नित्यं च गुरवे देयं नित्यं पूज्यास्तथागताः ।

चक्रसंवर

[3]सर्वतः पाणिपादाद्यं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः स्मृतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।

त्रिशरणानुशंसासूत्र

[4]एकचित्तक्षणे पुण्यममेयं शरणोद्भवम् ।
अतिरिच्यन्तेऽभिशास्ता अह्नापि यदि संभवेत् ।।

---

1. से० टि०, पृ० 120, (6), द्र०-वि० प्र० Vol. I, p. 11.
2. आ० प्र०, पृ० 142
3. से० प०, पृ० 69
4. आ० प्र०, पृ० 133

तस्माद् बुद्धं च धर्मं च सङ्घं च गणिनां वरम् ।
प्रयायाच्छरणं सम्यक् यदीच्छेदुपधिक्षयम् ।।

नागार्जुनपाद .

[1]भावस्य शून्यता नान्या नाभावश्चास्ति तां विना ।
तस्मात् प्रत्ययजा भावास्त्वया शून्याः प्रकाशिताः ।।

पञ्चलक्षाभिधानहेवज्र

[2]सर्वाकारवरोपेता शून्यता हेतुरादितः ।
अनालम्बकृपा पश्चाज्जगदर्थकरी फलम् ।।

प्रबन्ध

[3]यद्यदिष्टतरं किञ्चित् विशिष्टतरमेव च ।
तत्तद्धि गुरवे देयम् ।।

भगवान्

[4]यः कश्चित् मञ्जुश्रीः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा चित्रकर्मलिखितं पुस्तककृतं वा बुद्धं भगवन्तं पश्येत्। अयं ततोऽसंख्येयतरं पुण्यं प्रसवति। कः पुनर्वादो योऽञ्जलिप्रग्रहं वा कुर्यात्। पुष्पं धूपं दीपं वा दद्यादयमेव ततोऽसंख्येयतरं पुण्यं प्रसवति। .....यस्तु यश्चापि परिनिर्वृतं समं चित्तप्रसादेन नास्ति पुण्यविशेषता।

---

1. से० टि०, पृ० 135 (21), द्र०-चतुःस्तव 3.43
2. से० टि०, पृ० 142 (28)
3. आ० प्र०, पृ० 142
4. आ० प्र०, पृ० 150

भगवद्व्याकरण

[1]बोधौ स्थानं महाबोधिः प्रज्ञापारमितानये ।
नित्यं देशकस्थानं गृध्रकूटो महागिरिः ।।

महामन्त्रनये प्रोक्तं स्थानं श्रीधर्मधातुकम् ।
लोकधात्वादिसंबुद्धैर्बुद्धानां त्र्यध्ववर्त्तिनाम् ।।

यद्वैभाषिकसूत्रान्तधारणीकल्पदेशना ।
स्थानं नैकं जिनस्योक्तं मध्ये सत्त्वाशयेन तत् ।।

गृध्रकूटेऽपि मैत्रेयः प्रज्ञापारमितानयम् ।
बुद्धो मन्त्रनयं शुद्धं श्रीधान्ये देशयिष्यति ।।

विद्याधरपिटक

[2]जपाः तपांसि सर्वाणि दीर्घकालकृतान्यपि ।
अन्यचित्तेन मन्देन सर्वं भवति निष्फलम् ।।

शूकरिकावदान

[3]ये बुद्धानां शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम् ।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् कायान् लभन्ति ते ।।

---

1. से० टि०, पृ० 117 (3)
2. आ० प्र०, पृ० 152
3. आ० प्र०, पृ० 133

सरहपाद

(1)

[1]कल्पविनाशान्नाशं बुद्धेरनुकल्पयन्ति कुधियः ।
अस्मादेव तु सुधियामुदयति गगनाधिकं किमपि ।।

(2)

[2]जयतु सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम् ।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः ।।

•

1. से० टि०, पृ० 140 (26)
2. से० टि०, पृ० 143 (29)

अष्ट-महाश्मशान : स्वरूप एवं परिचय

—डॉ० बनारसी लाल—

[बौद्ध साधना विशेषकर तान्त्रिक साधना में श्मशान का अत्यन्त महत्त्व है। बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में इसके विशद स्वरूप का उल्लेख मिलता है। बौद्ध तन्त्रों विशेषकर संवरतन्त्र के मण्डलों में आठ श्मशानों का चित्रांकन रहता है। ये श्मशान व्यक्ति के मनोगत अवस्थाओं की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति भी हैं।

बौद्ध तन्त्रों के साधन ग्रन्थों में प्राप्त श्मशान के सन्दर्भों से श्मशान का जो स्वरूप उभरता है, उसके अनुसार श्मशान तन्त्र साधना के लिए उपयुक्त एवं मनोरम स्थानों में से एक हैं तथा ये महान् ऋद्धि सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। प्रस्तुत लेख में इन श्मशानों का इनमें स्थित वृक्ष, अधिपति, इनका वर्ण, दिक्पाल, वाहन, आयुध, नाग, मेघ, चैत्य एवं पर्वत आदि विस्तृत परिचय दिया जा रहा है।]

बौद्ध तन्त्रों में श्मशान का अनेक रूपों में उल्लेख आया है और उसका महत्त्व भी विभिन्न रूपों में प्रतिपादित मिलता है। श्मशानों के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हैं। प्रायः श्मशान शब्द से कब्रिस्तान, मरघट, शवस्थान, शवदाहस्थान का ही बोध होता है। बौद्ध तन्त्रों में भी यह इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त मिलता है। संस्कृत में इसके लिए पितृवन शब्द का भी प्रयोग हुआ है[1]। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से श्मशान शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—"श्मानः शवाः शेरतेऽत्र-शी-आनच्, डिच्च", अथवा 'श्मन् शब्देन शवः प्रोक्तः तस्य शानं शयनम्'[2]। 'श्मेति शवाः शेरतेऽत्र'[3]। बौद्ध तन्त्रों में हेवज्रतन्त्र में इसकी जो व्युत्पत्ति दी है, तदनुसार श्वास लेता है अर्थात् जहाँ अन्तिम बार श्वास लेता है, इस दृष्टि से इसे श्मशान कहा जाता है। "श्वसतीत्यनया युक्त्या श्मशानेत्यभिधीयते"[4]। हेवज्रतन्त्र की टीका योगरत्नमाला में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है—"शवानां वसतिरिति नैरुक्तो वर्णलोपः। शवानामावास इत्यर्थः ....वक्ष्यमाणस्यानेन श्मशानशब्देन सूचना कृ(क्रि)यते। श्मशाने निरात्मके देहे नाथः परमान्दमयो विहरति। कथं देहः श्मशानं श्वसतीत्यनया युक्त्या श्मशानेत्यभिधीयते"[5]। इसके अनुसार जहाँ शवों का वास होता है, वह श्मशान है; नैरुक्त

---

1 'श्मशानं स्यात्पितृवनम्' - अमरकोष, पृ० 301

2 संस्कृत-हिन्दीकोष - आप्टे, पृ० 1033

3 अमरकोष - पृ० 301

4 हेवज्रतन्त्र - 1.3.16

5 हेवज्रतन्त्र - पृ० 115

विधि से वर्ण लोप कर श्मशान शब्द निष्पन्न हुआ है। देह को श्मशान के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा है—इस श्मशान में अर्थात् निरात्मक देह में परमानन्दमय नाथ (श्रीहेरुक) विहार करता है।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में भी श्मशान शब्द का उल्लेख हुआ है। तदनुसार भिक्षुओं को साधना एवं ध्यान के लिए श्मशान में वास करना चाहिए। इसीलिए बौद्ध भिक्षुओं के द्वादश धूतगुणों में एक श्मशानिका का उल्लेख हुआ है[1]। ध्यान साधना के लिए विशेष कर अनित्यता की भावना के लिए श्मशान का महत्त्व स्वीकार किया गया है। दीघनिकाय के महासतिपट्ठानसुत्त में कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना का विवरण है। जहाँ कायानुपश्यना के अन्तर्गत श्मशानयोग का उल्लेख हुआ है। इसमें भिक्षुओं को श्मशान में उपस्थित बीभत्सता का ध्यान करते हुए स्वयं के शरीर में इसे घटाने के लिए कहा है। कहा है—हे भिक्षुओं! एक दिन के मरे, दो दिन के मरे, तीन दिन के मरे, फूले, नीले पड़ गए, पीब भरे मृत शरीर को श्मशान में फेंका देखो। ऐसी ही होने वाली अपने शरीर की स्थिति पर भी इसे घटाओ। यह शरीर इससे बच सकने वाली नहीं है। भिक्षुओं! कौओं से खाये जाते, चील्हों से खाये जाते, गिद्धों से खाये जाते, कुत्तों से खाये जाते, नाना प्रकार के जीवों से खाये जाते श्मशान में फेंके मृत शरीर को देखो और इसे अपने शरीर पर घटाओ। यह शरीर भी एक दिन ऐसी स्थिति को प्राप्त होगा। इस प्रकार मांसरहित, रक्त लगे, नसों से बंधे, हड्डियों को दिशा-विदिशा में फेंके देखें, कहीं हाथ की हड्डी, कहीं पैर की, जंघा की, कहीं कमर की और कहीं खोपड़ी की। इसी प्रकार शंख के समान सफेद एवं सड़ी हड्डी वाले शरीर को श्मशान में फेंका देखें और इसे अपने शरीर पर घटावें। एक दिन यह भी इसी स्थिति को प्राप्त होगी इत्यादि[2]। इसलिए स्पष्ट है कि जगत् की अनित्यता, असारता, क्षणिकता एवं अनात्मता की भावना करने के लिए श्मशान अत्यधिक उपयुक्त स्थल के रूप में प्रारम्भ से प्रतिपादित था।

बौद्धतन्त्रों में उल्लिखित श्मशानों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला साधना स्थल के रूप में। साधना के लिए मनोरम एवं उपयुक्त स्थालों जैसे विविक्त प्रदेश, मातृगृह, शून्यवेश्म, एकलिङ्ग, नदीतीर, वृक्षमूल, चतुष्पथ, शिवालय इत्यादि स्थानों में श्मशान का भी उल्लेख किया गया है। दूसरा चौबीस पीठों के विभाजन में श्मशान एवं

1 धर्मसंग्रह, म० सू० सं० 1, पृ० 333

2 दीघनिकाय—राहुल एवं काश्यप, पृ० 192

उपश्मशान की स्थिति है। संवरतन्त्रों में वर्णित प्रसिद्ध चौबीस पीठों में श्मशान के अन्तर्गत नगर एवं सिन्धु पीठ परिगणित हैं और उपश्मशान के अन्तर्गत मरु एवं कुलूत पीठ। इन पीठों में स्थित वीर-वीरेश्वरी, नाडी आदि के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है[1]। तीसरे प्रकार के श्मशानों का वर्णन हम मण्डलों में पाते हैं। मण्डलों में प्रायः आठ श्मशानों का चित्रांकन रहता है। ये श्मशान मनोगत अवस्थाओं की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति भी हैं। इनका स्वरूप उपर्युक्त श्मशानों से कुछ भिन्न सा प्रतीत होता है। उपर्युक्त तीन विभाजनों के अतिरिक्त भी बौद्ध तन्त्रों में श्मशानों का उल्लेख आया है। उन सभी रूपों का समग्र अध्ययन अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि चक्रसंवरतन्त्र टीका में सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मों को चक्रों में प्रस्तारित करते समय डाकिनियों को ज्ञानचक्र, चित्तचक्र, वाक्चक्र, कायचक्र और श्मशानचक्र में प्रस्तारित किया है[2]। अन्यत्र श्मशानचक्र का उल्लेख नहीं मिलता है।

बौद्ध तन्त्रों के साधन ग्रन्थों में प्राप्त श्मशान के सन्दर्भ से श्मशान का जो स्वरूप उभरता है, उसके अनुसार श्मशान तन्त्र साधना के लिए उपयुक्त एवं मनोरम स्थानों में से एक के रूप में स्वीकृत है[3]। प्रज्ञावान् योगी के लिए यह स्थान अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है[4]। चतुर्दशी और अष्टमी आदि तिथियों में नित्य श्मशानादि में पूजा करनी चाहिए। गुह्यसमाजतन्त्र के अनुसार अभिचार आदि कर्म भी मातृगृह, श्मशान, शून्यवेश्म, चतुष्पथ आदि स्थानों में करना चाहिए।

मातृगृहे श्मशाने शून्यवेश्मनि चतुष्पथे ।
एकलिङ्गैकवृक्षे वा अभिचारं समारभेत्[5] ।।

इन स्थानों पर साधना करने वाले योगी को तन्त्र एवं मन्त्र का ज्ञाता होना चाहिए। साथ ही सत्त्वों का हित या कल्याण करने की बोधिचित्त की भावना से युक्त होकर गिरि-गह्वरों, कुञ्जों में, नदी-तीरों पर, नदी-संगमों पर, सागर के तटों पर, शिवालयों में, मातृगृह, श्मशान, उद्यान, विहार, चैत्यायतन एवं चतुष्पथों में साधना करने पर सभी इच्छित

---

1 द्र०-बौद्ध तन्त्रों में पीठोंपपीठादि का विवेचन - 1-5, धीः अंक - 1, 3, 10, 11, 21
2 चक्रसंवरतन्त्रविवृति, हस्तलेख, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग, सारनाथ।
3 'श्मशानादौ मनोरमे स्थाने' - साधनमाला-द्वितीय, पृ० 440
4 'सप्रज्ञयोगीश्वररतिस्थानं' - श्रीसंवररहस्यं नाम साधनम्-धीः 26, पृ० 115
5 गुह्यसमाजतन्त्र, पृ० 90, गा० ओ० सी० ।

कामनाओं की सिद्धि होती है[1]। इस प्रकार इन विशेषणों से युक्त श्मशानों में पूजा, बलिपूजा, अभिचारकर्म आदि योगियों को करना चाहिए, विशेषकर अष्टमी एवं चतुर्दशी आदि तिथियों में। ये श्मशान महान् ऋद्धि प्रदान करने वाले हैं।

अष्ट-श्मशान विषय पर बहुत कम साहित्य प्राप्त है। इसलिए उसके साधनात्मक अन्तः तथा बाह्य स्वरूप पर विस्तृत परिचय देना इदानीं शक्य नहीं है। अष्ट-श्मशान विषय पर बौद्ध तन्त्रों में यत्र तत्र काफी सामग्री है। इस विषय पर पृथक् रूप से भी कुछ साहित्य उपलब्ध है, उनका यहाँ किञ्चित् निदर्शन करना समीचीन होगा। लूयीपाद की एक रचना अष्ट-श्मशानविधि की संस्कृत मातृका चीन में प्राप्त हुई है, जिसे Finot ने प्रकाशित किया है[2]। अष्टश्मशान विषय पर भोट तन्ग्युर संग्रह में तीन लघु ग्रन्थ संकलित हैं। 1. अष्ट-श्मशाननाम (तो॰ 1212) 2. अष्टश्मशाननाम (तो॰ 1213) तथा 3. अष्टश्मशानाख्यातनाम (तो॰ 1216)। इनमें प्रथम ग्रन्थ (सं॰ 1212) में अष्टश्मशानों के नाम भिन्न हैं। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। दूसरे (सं॰ 1213) में बहुत संक्षेप में इनके नाम एवं स्वरूप दिये गये हैं। तीसरे (सं॰ 1216) में कुछ विस्तार से इनका परिचय दिया गया है। इसके लेखक आचार्य योगी हैं। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग (तिब्बती संस्थान, सारनाथ) की शोध पत्रिका धीः में ''श्रीसंवररहस्यं नाम साधन''[3] नामक ग्रन्थ में भी इनका विवरण मिलता है। इसी प्रकार ''हेरुकाद्यवज्रवाराहीपरमरहस्य''[4] नामक ग्रन्थ में भी इनका संक्षिप्त परिचय है। प्रो॰ जी॰ टुची ने अपने ग्रन्थ The Temples of Western Tibet and Their Artistic Symbolism (Tsaparang), Indo-Tibetica-III.2, p. 174-175 में सुरतवज्र विरचित वज्रप्रदीपटिप्पणी में प्राप्त अष्ट-श्मशानों के उद्धरण को प्रस्तुत किया है। इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में भोट ग्रन्थ का आङ्ग्ल भाषानुवाद भी प्रस्तुत किया है[5]। इसी प्रकार साधनमाला में ''महामायादेव्याः श्मशानम्'' नामक ग्रन्थ में भी महामाया के आठ श्मशानों का उल्लेख है, परन्तु वहाँ विख्यात श्मशानों से नितान्त भिन्न नाम हैं[6]। संवरोदयतन्त्र (17.36-45) में भी इनका परिचय मिलता है। क्रियासमुच्चय एवं स्वयंभूपुराण में भी श्मशानों का

1 हेरुकाद्यपरमरहस्यतन्त्रम्, धीः 27, पृ॰ 126
2 Manuscrits Sanscrits de Sādhana en chine, Journal Asiatique, 1934, 49 ff.
3 श्रीसंवररहस्यं नाम साधन, धीः अंक 26, पृ॰ 115-116
4 श्रीहेरुकाद्यवज्रवाराहीपरमरहस्यनाम तन्त्रम्-धीः 27, पृ॰ 135
5 Appendix-I, pp. 173-181.
6 साधनमाला, साधन संख्या 223, द्वितीय भाग, पृ॰ 437

विस्तृत परिचय दिया हैं, जिसका उल्लेख एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की धर्मकोश नामक पाण्डुलिपि में हुआ है (पृ० 20-27)।

उपर्युक्त साहित्य का अध्ययन करने पर विदित होता है कि विख्यात अष्ट-श्मशान चण्डोग्र आदि हैं। इनमें इनकी दिशाएं, क्षेत्रपाल या अधिपति, इनका वर्ण, दिक्पाल (लोकपाल) और इनका वर्ण, वाहन, नाग, मेघ, पर्वत, चैत्य एवं धारण किये हुए आयुधों का वर्णन मिलता है। इनके सम्बन्ध में विस्तृत परिचय दें इससे पूर्व उपर्युक्त साहित्य के आधार पर श्मशान का जो स्वरूप प्रकट होता है, उस पर किञ्चित् प्रकाश डाला जा रहा है। इनमें श्मशान का स्वरूप अत्यन्त रौद्र, बीभत्स और भयंकर चित्रित किया गया है। साधनमाला में संकलित 'महामायादेव्याः श्मशानम्' में कहा गया है कि यह दग्ध अंग वाले, अर्ध दग्ध अंग वाले, खण्डित अंग वाले, अर्ध खण्डित अंग वाले, भयंकर, शूल से विद्ध शवों से व्याप्त है[1]। वहीं इसे अतिभय से युक्त भी कहा गया है। ये श्मशान महान् ऋद्धि प्रदान करने वाले हैं। अतः यहाँ साधना एवं भावना करने के लिए कहा है—''अतिभयाकुलं श्मशानं भावयेत्''[2]। यहाँ महान् ऋद्धि प्रदान करने वाले महिष, मार्जार, भल्लूक, व्याघ्र, शव, शूकर एवं पिशाच मुख वाले यक्ष हैं। ये श्मशान गीदड़, गृध्र, उल्लू, कौवे और वेताल से व्याप्त हैं[3]। अष्टश्मशान नामक ग्रन्थ (तो० सं० 1213) में भी कहा है कि यह श्मशान भूत, वेताल और सियारों के क्रन्दन के शब्दों से पूर्ण है। श्रीसंवररहस्यं नाम साधन में भी श्मशानों का स्वरूप चित्रण करते हुए कहा है—ये आठ श्मशान भयानक एवं रौद्र प्रेतों एवं मनुष्य की अस्थियों से व्याप्त हैं। परन्तु प्रज्ञावान् योगियों के लिए यह परम आनन्द देने वाला स्थान है। ये श्मशान कुत्ते, गीदड़, सिंह, नाग, व्याघ्र, जंगली बकरी, लकड़बग्गा, काक, उलूक, गृध्र और चिल्लिका (झींगुर) इत्यादि से भरे हुए हैं। यहाँ कङ्काल दौड़ रहे हैं, कबन्ध (धड़) नृत्य कर रहे हैं, छिन्नमस्तक हंस रहे हैं। शूल से विद्ध प्रेत गा रहे हैं। इनके अतिरिक्त अनेक भयानक प्रेत हैं, घने वृक्षों से व्याप्त हैं, चिता की अग्नि उद्दीप्त है और योगिनी वृन्द वीर रसपान से प्रसन्न होकर नृत्य कर रहे हैं[4]। हेवज्रतन्त्र के अनुसार आठ योगिनियों से परिवृत्त होकर (हेरुक) नाथ श्मशान में क्रीडा करते हैं[5]।

---

1 साधनमाला, द्वितीय भाग, पृ० 437

2 सा० मा०, द्वितीय-भाग, पृ० 453

3 सा० मा० द्वितीय भाग, पृ० 437

4 श्रीसंवरहस्यं नाम साधन, धीः 26, पृ० 115-116

5 'श्मशाने क्रीडते नाथोऽष्टयोगिनीभिः परिवृत्तः' (हे० त० 1.3.16)।

बौद्धतन्त्र साहित्य विशेषकर संवर श्रेणी के ग्रन्थों में वर्णित श्मशान या अष्ट-श्मशान का जो स्वरूप लक्षित होता है, उसके अनुसार यह साधना के लिए उपयुक्त स्थल तो है ही साथ में मण्डलों में इनका चित्रांकन भी किया जाता है। तदनुसार तन्त्रसाधना में मण्डलों का प्रयोग किया जाता है। अभिसमयमञ्जरी में आठ श्मशानों की मध्यवर्ती मण्डल नायिका (वाराही) की भावना करने के लिए कहा गया है, जो नैरात्म्य स्वरूपा है—"नैरात्म्यास्वरूपत्वेन श्मशानाष्टकमध्यवर्तिनीं भावयेत्"[1]। इसी प्रकार वाराही साधनों में श्मशानाष्टक के मध्य धर्मोदयान्तर्गत पद्म वरटक में स्थित, रवि सोम संपुटस्थ वंकार वज्र और उसके बीज से उत्पन्न होते हुए भगवती वज्रवाराही को जो प्रलयानल की तरह हैं और एक मुख एवं दो भुजाओं वाली हैं, की भावना करने के लिए कहा गया है[2]।

मण्डलों में इन श्मशानों का सुन्दर चित्रण प्रो० टुची को Tsaparang में मिला जिसका विवरण उन्होंने अपने ग्रन्थ Indo-Tibetica में दिया है[3]।

प्रश्न है कि मण्डलों में आठ ही श्मशान क्यों चित्रित करते हैं और आठ ही श्मशानों की मान्यता कैसे बनी? यद्यपि इसका कोई स्पष्ट निराकरण नहीं मिलता। तथापि मण्डल में पूर्व आदि चार दिशाएं तथा आग्नेयादि चार विदिशाएं होने के कारण ये श्मशान भी आठ हैं, ऐसा प्रो० टुची ने कल्पना की है[4]। ये आठ श्मशान मानवीय मन की इच्छाओं के प्रतीक भी हैं। इसलिए बौद्ध तन्त्रों में इन्हें अष्ट-विज्ञानों के प्रतीक मानकर आठ श्मशान कल्पित किए गये हैं। वस्तुतः पञ्चस्कन्ध एवं छठे मन में समस्त लोक धर्मों का संग्रह होता है। सभी लोकों के संग्रह करने की दृष्टि से आठ श्मशान आठ विज्ञानों यथा—चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान, आलयविज्ञान और क्लिष्टमनोविज्ञान के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। अभिसमयमञ्जरी में इसी को रेखांकित करते हुए कहा है—"सर्वलोकधातुसंग्राहकत्वेन चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमन आलयक्लिष्टमनोविज्ञान-मित्यष्टविज्ञानां नैरात्म्यास्वरूपत्वेन श्मशानाष्टकमध्यवर्तिनीं भावयेत्"[5]।

---

1 अभिसमयमञ्जरी, पृ० 8

2 "श्मशानाष्टकमध्ये धर्मोदयान्तर्गतपद्मवरटके चन्द्रस्थरविसोमसम्पुटस्थवंकारवज्रं तद्बीजसमुद्भवां भगवतीं वज्रवाराहीं प्रलयानलसन्निभां एकवक्त्रां द्विभुजां.....।" साधनमाला, भाग-2, पृ० 440, 442

3 Indo-Tibetica, III. 2, pp. 50-54

4 Indo-Tibetica, III. 2, p. 52

5 अभिसमयमञ्जरी, पृ० 8, द्र०-Indo-Tibetica, III. 2, p. 51

श्रीसंवररहस्यं नाम साधन में भी आठ श्मशानों को अष्टविज्ञानस्वभाव कहा है—''बुद्धालयनिष्पत्तिसमकाल एव निष्पन्नकूटागाराद्बहिर्धर्मोदयाऽभ्यन्तरे सर्वलोकधातु-नैरात्म्यसंग्राहकं मनोविज्ञान-आलयविज्ञान-क्लिष्टमनोविज्ञान-चक्षुरादिविज्ञानपञ्चात्मक-अष्टविज्ञानस्वभावा दिग्विदिक्षु श्मशानाष्टकं''[1]।

उपर्युक्त साहित्य का अध्ययन करने पर विदित होता है कि आठ श्मशान चण्डोग्र आदि हैं। ये श्मशान मण्डल के चार दिशाओं और चार विदिशाओं में स्थित हैं। इन श्मशानों में स्थित श्मशानाधिपतियों (क्षेत्रपालों) का स्वरूप, वर्ण, इनमें स्थित वृक्ष, दिक्पाल और उनका वर्ण, वाहन, नाग, नागों का वर्ण, मेघ तथा मेघ का वर्ण, पर्वत तथा पर्वत का वर्ण, चैत्य तथा चैत्य का वर्ण, दिक्पालों के आयुध इत्यादि का वर्णन मिलता है। यद्यपि इन सबके वर्णन में उपर्युक्त साहित्य में कहीं-कहीं कुछ भिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है, जैसे वर्णों, दिशाओं इत्यादि के सन्दर्भ में फिर भी अधिकांश में समानता है। यहाँ उपर्युक्त तीन आधार ग्रन्थों वज्रप्रदीपटिप्पणी, अष्टश्मशानाख्यात नाम भोटग्रन्थ (तो० 1216) तथा प्रो० टुची के अनुवाद के आधार पर इनका स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है। इन तीनों सन्दर्भों में प्रायः अष्ट-श्मशानों का पूर्ण परिचय समा जाता है, अन्य सन्दर्भों में कुछ न्यूनाधिक्य है।

1. चण्डोग्र

पूर्व दिशा में चण्डोग्र श्मशान है। इसमें शिरीष[2] का वृक्ष है, इस वृक्ष पर श्मशानाधिपति (क्षेत्रपाल=यक्ष) चण्डोग्र है। यह गजमुखाकार श्वेत वर्ण का है। इस श्मशान का दिक्पाल सहस्राक्ष गौर वर्ण का इन्द्र है, जो शुक्ल ऐरावत पर आरूढ है और इसके दाएं हाथ में वज्र तथा बायाँ तर्जन मुद्रा में है। इस श्मशान का नाग वासुकी है, जो पीत वर्ण का है। इसके ऊपर [3]नीलवर्ण के गर्जित मेघ हैं। इस श्मशान में भूरत्नमय (मटमैला) वर्ण का पर्वत सुमेरु है और चैत्य सितवज्र है, जो श्वेत वर्ण का है।

2. करङ्कभीषण

दक्षिण दिशा में करङ्कभीषण श्मशान स्थित है। भोट अनुवादों के अनुसार इसका नाम भीषण है और करङ्क को ज्वालाकुल श्मशान के साथ जोड़ा गया है। इसका नाम

---

1 श्रीसंवररहस्यं नाम साधनम्, धीः 26, पृ० 115

2 भोट अनुवाद में अरुर (हरीतकी) है।

3 वज्रप्रदीपटिप्पणी में सभी मेघों का वर्ण विश्ववर्ण दिया है।

करङ्क भैरव भी है। इसमें आम का वृक्ष है[1]। इस वृक्ष पर अधिपति करङ्कभीषण स्थित है। इसका स्वरूप महिषमुख[2] वाला तथा कृष्ण वर्ण का है। दिक्पति कृष्ण वर्ण का यम है, जो महिषारूढ है। इसके दाएं हाथ में दण्ड तथा बाएं हाथ में पाश है। इस श्मशान में नाग सित वर्ण का पद्म है। इसके ऊपर पीत (गौर) वर्ण के आवर्तक मेघ है। इस श्मशान में गौर वर्ण का पर्वत मलय है और कृष्ण वर्ण का चैत्य पिशुनवज्र है।

3. ज्वालाकुल

पश्चिम दिशा में ज्वालाकुल श्मशान स्थित है। भोट ग्रन्थ के अनुसार इसका नाम ज्वालाकुलकरङ्क होना चाहिए। इस श्मशान में अशोक का वृक्ष है, जिसके ऊपर यक्षाधिपति ज्वालाकुल विराजमान है। ये मकरमुख वाले पीत[3] वर्ण के हैं। दिक्पाल श्वेत वर्ण के वरुण हैं, जो मकरारूढ हैं। इनके दायें हाथ तर्जन मुद्रा में तथा बायें हाथ में पाश है। इस श्मशान का नाग श्याम[4] वर्ण का कर्कोटक है। इसके ऊपर श्याम वर्ण का घोर मेघ है। यहाँ सित वर्ण का पर्वत कैलाश है तथा सित वर्ण का ही चैत्य संज्ञावज्र है।

4. गह्वर

उत्तर दिशा में गह्वर श्मशान स्थित है। यहाँ अश्वत्थ वृक्ष है। वृक्ष के ऊपर अधिपति गह्वर स्थित है। इसका स्वरूप मनुष्य मुखवाला [5]पीत वर्ण का है। दिक्पति गौर वर्ण का कुबेर है, जो नर के ऊपर अर्थात् पालकी में आरूढ है। इसका दायां हाथ अभयमुद्रा में तथा बाएं हाथ में गदा धारण किए हैं। इस श्मशान में तक्षक नाग है, जो [6]रक्तवर्ण का है। श्मशान के ऊपर श्वेतवर्ण के घन[7] मेघ हैं। यहाँ श्यामवर्ण का मन्दर पर्वत तथा गौर वर्ण का चित्तवज्र चैत्य है।

5. लक्ष्मीवन

आग्नेय दिशा (विदिशा) में लक्ष्मीवन श्मशान है। इस श्मशान में करञ्ज का वृक्ष है। वृक्ष के ऊपर अधिपति लक्ष्मीवन विराजमान है। इसका स्वरूप श्वेत वर्ण का छाग

---

1 प्रो० टुची ने इसे बिभीतक वृक्ष माना है तथा भोट ग्रन्थ में बरुर नाम दिया है। बिभीतक को बहेड़ा (Terimnalia bellerica Roxb.) कहा जाता है।

2 भोट ग्रन्थ में मनुष्यमुखाकार दिया है।

3 वज्रप्रदीपटिप्पणी में श्वेत वर्ण का बतलाया है।

4 व० प्र० टि० में कर्कोटक रक्तवर्ण का है।

5 व० प्र० टि० में गौर वर्ण है।

6 व० प्र० टि० में कृष्ण वर्ण है।

7 व० प्र० टि० में घूर्णित मेघ है।

(बकरा)[1] मुख वाला है। इस श्मशान का दिक्पति हुताशन (अग्नि) है, जो रक्त वर्ण का है। दिक्पति छाग[2] पर आरूढ है। इसके दाएं हाथ में अक्षमाला तथा बाएं हाथ में कमण्डल धारण किए है। इस श्मशान में नाग श्वेत वर्ण का महापद्म है। श्मशान के ऊपर रक्त वर्ण के घूर्णित[3] मेघ हैं। इस महाश्मशान में पीतवर्ण का गन्धमादन पर्वत है तथा चैत्य कायवज्र रक्त वर्ण का है।

6. घोरान्धकार

नैर्ऋत्य दिशा में महाश्मशान घोरान्धकार है। इस श्मशान में उदुम्बर[4] का वृक्ष है। वृक्ष के ऊपर श्मशानाधिपति घोरान्धकार (भीषण) स्थित है। इस अधिपति का स्वरूप कृष्ण वर्ण तथा शव-मुखाकार है। इसका दिक्पति नैर्ऋति (राक्षस) है, जो शव पर आरूढ हैं। इसका दायाँ हाथ तर्जन मुद्रा में तथा बाएं हाथ में नरमुण्ड धारण किए है। इस श्मशान का नाग अनन्त है, जो [5]नील वर्ण का है। इस श्मशान के ऊपर गौर वर्ण के पूरण मेघ हैं। श्वेत वर्ण का हैम (हिमालय) पर्वत यहाँ स्थित है तथा चैत्य कृष्ण वर्ण का रत्नवज्र है।

7. किलिकिलारव

वायव्य दिशा में महाश्मशान किलिकिलारव है। यहाँ पार्थिव (अर्जुन) वृक्ष है। वृक्ष पर श्मशानाधिपति किलिकिलारव स्थित है, जो [6]धूम्र वर्ण का है। इसका आकार [7]मृग मुखाकार है। इस श्मशान में दिक्पति मारुत (वायु) है, इसका वर्ण श्वेत है और यह मृगारूढ है। इसके दोनों हाथों में ध्वज है। इस श्मशान में नाग कर्बुर (चितकबरा) वर्ण का कुलिक है। श्मशान के ऊपर श्याम वर्ण के वर्षण मेघ हैं। यहाँ नीलवर्ण का पर्वत श्रीपर्वत तथा चैत्य श्यामवर्ण का धर्मवज्र है।

---

1 व० प्र० टि० में गोमुख।
2 व० प्र० टि० में गोवाहन।
3 व० प्र० टि० में घन।
4 व० प्र० टि० में लतापर्क्कटी।
5 व० प्र० टि० में पाण्डुर।
6 व० प्र० टि० में श्याम।
7 भोट में महिष।

8. अट्टहास[1]

ईशान कोण में अट्टहास महाश्मशान है। इसमें न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है। इस वट वृक्ष पर श्मशानाधिपति अट्टहास विराजमान है जो श्वेतवर्ण का है तथा इसका स्वरूप वृष[2] मुखाकार है। दिक्पति ईशान (महेश्वर) है, इसका वर्ण नील है। इसका वाहन वृषभ है। इसके दाएं हाथ में त्रिशूल तथा बायें हाथ में कपाल है। इस श्मशान में नाग शङ्खपाल है जो पीत वर्ण का है। श्मशान के ऊपर विश्ववर्ण (नानावर्ण) के चण्ड मेघ हैं। कृष्ण वर्ण का महेन्द्र पर्वत यहाँ स्थित है और चैत्य वाग्वज्र श्वेत वर्ण का है।

आगे दी हुई तालिका-1 के माध्यम से इसे स्पष्टता से समझा जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन आठ श्मशानों का कुछ भिन्न स्वरूप भी तन्त्रों में प्राप्त है। इनमें कुछ भिन्नता तन्त्रों में मण्डलों के अनुसार भी है। यहाँ सर्वप्रथम भोट तन्ग्युर संग्रह में संगृहीत अष्टश्मशान (तो० सं० 1212) का उल्लेख किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में यह स्पष्ट किया गया है कि कोई आठ श्मशानों का स्वरूप इस रूप में भी मानते हैं। तदनुसार ये आठ श्मशान हैं—पूर्व में अट्टहास, दक्षिण में चरित्र, पश्चिम में कोलगिरि, उत्तर में जयन्ती, ईशान में उज्जयिनी, आग्नेय में प्रयाग, नैर्ऋत्य में कर्णाट (?) और वायव्य में देवीकोट। इस प्रकार इन श्मशानों में क्रमशः, वृक्ष हैं नागपुष्प, आम्र, अश्वत्थ, पुन्नाग, न्यग्रोध, करञ्ज, लताजटी और उदुम्बर। दिक्पति हैं—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, रुद्र, अग्नि, नैर्ऋति और वायु। नाग हैं—महापद्म, कुलिक, कर्कोटक, शंखपाल, तक्षक, पद्म, अनन्त और वासुकि। मेघ हैं केसर वर्ण का घोर, नील वर्ण का चण्ड, श्वेत वर्ण का घन, पीत वर्ण का आवर्तक, कृष्ण वर्ण का गर्जित, विश्ववर्ण का घूर्णित, कृष्ण वर्ण का वर्षण और कर्बुर (चितकबरा) वर्ण का पूरण मेघ। इसे तालिका सं० 2 से सरलता से जाना जा सकता है। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त श्मशानों के नाम वर्तमान में भौगोलिक दृष्टि से चिह्नित किए जा सकते हैं।

साधनमाला में संगृहीत ''महामायादेव्याः श्मशानं'' नामक ग्रन्थ में नितान्त भिन्न प्रकार के श्मशानों के नामों का उल्लेख आया है। यद्यपि महामाया तन्त्र भी संवरतन्त्र श्रेणी का ही ग्रन्थ है और इसमें स्पष्ट रूप से कहा है कि घोर श्मशान अष्टक के मध्य स्थित

1 व० प्र० टि० में अट्टहास एवं लक्ष्मीवन का विवरण एक-दूसरे से बदल गए हैं।

2 व० प्र० टि० में गोमुख तथा वाहन भी गो हैं।

अष्टदल या चतुर्दल कमल के ऊपर चिन्तन करना है[1]। इस साधन ग्रन्थ के अनुसार आठ श्मशान निम्नलिखित हैं—1. पूर्व में साधकानुग्रह नामक श्मशान, 2. उत्तर दिशा में अद्वैत-कर, 3. पश्चिम में क्रोधानन, 4. दक्षिण में घोरान्धकार, 5. आग्नेय में महाप्रलय, 6. नैर्ऋत्य में महामेलापक योगबहुल, 7. वायव्य में सिंहनाद फेत्कार और 8. ऐशान्य में सरोजबीज। इन नामों को देखने से प्रश्न होता है कि क्या यह पूर्वोक्त विख्यात आठ श्मशानों की विशिष्टता को प्रतिपादित करते हैं। इन भिन्न नामों का श्मशान के सन्दर्भ में क्या तात्पर्य है यह अनुसन्धेय है।

कालचक्रतन्त्र में आठ श्मशानों का तो उल्लेख हुआ है, परन्तु कालचक्रतन्त्र पर संस्कृत में उपलब्ध साहित्य में आठ श्मशानों के नामों का उल्लेख नहीं किया है। इसलिए यह कहना कठिन है कि कालचक्रतन्त्र में उल्लिखित श्मशान संवरतन्त्र के श्मशानों से किस प्रकार से भिन्न हैं।

कालचक्रतन्त्र के अनुसार अष्ट-श्मशानों की स्थिति मण्डल में अग्नि और वायु वलयों के मध्य है। वहाँ ये आठ अरात्मक चक्रों के माध्यम से दर्शाए गये हैं[2]। पूर्वादि दिशाओं में ये चक्र रक्त वर्ण के हैं तथा आग्नेयादि विदिशाओं में श्वेत वर्ण के हैं। इन चक्रों में निम्नलिखित देवियाँ स्थित हैं, यथा—पूर्व चक्र में कृष्ण वर्ण की श्वानास्या, दक्षिणचक्र में रक्तवर्ण की शूकरास्या, पश्चिमचक्र में पीतवर्ण की जम्बूकास्या, उत्तर चक्र में सित वर्ण की व्याघ्रास्या। आग्नेय में कृष्णवर्ण की काकास्या, नैर्ऋत्य में रक्तवर्ण की गृध्रास्या, वायव्य में पीतवर्ण की गरुडास्या और ईशान में सित वर्ण की उलूकास्या स्थित हैं। श्वानास्यादि सभी देवियाँ कर्ति-कपालधारी, त्रिनेत्रों वाली, नग्न, पञ्चमुद्राओं से मुद्रित और गले में मुण्ड मालाएं धारण की हुई हैं[3]। कालचक्रपूजाविधि में विधिपूर्वक पूर्वादि श्मशानों में इन देवियों का न्यास किये जाने का वर्णन है[4]।

यहाँ संक्षेप में बौद्ध तन्त्रों में वर्णित आठ महाश्मशानों का स्वरूप एवं परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा साथ में आठ श्मशानों से सम्बद्ध अन्य परिकल्पनाओं की ओर

---

1 घोरश्मशानाष्टकमध्यस्थकूटागारान्तरालकमलमष्टदलं चतुर्दलं वा चिन्तयेत् - (महामायातन्त्रटीका, पृ० 38)।

2 कालचक्रमण्डलम्, निष्पन्नयोगावली, पृ० 90

3 कालचक्रमण्डलम्, नि० यो०, पृ० 90-91

4 कालचक्रपूजाविधिः, धीः 25, पृ० 183-184

भी दिशा निर्देश किया गया है। यह कहना युक्तिसंगत नहीं होगा कि इनका जो परिचय प्रस्तुत किया है, वह अन्तिम है। क्योंकि जो उद्धरण और सन्दर्भ उपलब्ध हैं, उनमें अनेक विसंगतियाँ दिखलाई पड़ती हैं। जैसे कि पहले कहा जा चुका है यह परिचय तीन मुख्य आधार ग्रन्थों के अनुसार दिया गया है। इनमें भी भोटानुवाद को प्रामाणिक मानते हुए प्रस्तुत किया है। भोटानुवाद में प्रस्तुत विवरण भी निर्दोष एवं सही है या पूर्ण है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। वहाँ भी कुछ विसंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जैसे गर्जित मेघ का दो बार उल्लेख होना एवं जैसे अधिपति यम के स्वरूप में महिष मुख के स्थान पर मनुष्यमुख का होना, शवमुख के स्थान पर महिष मुख का उल्लेख होना आदि। दिशाओं को भी किस क्रम में लेना है इसे भी स्पष्ट करना होगा। जैसे संवररहस्यं नाम साधन में कहा है पूर्वादि दिशाओं को वाम से अर्थात् वामावर्त पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण इस क्रम से तथा आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान इस क्रम से विदिशाओं को लेना है "पूर्वादिदिक्षु वामेन दक्षिणावर्तिकेन तु। लक्ष्मीवनं.........अग्न्यादिविदिक्षु च"[1]। हेरुकाद्यवज्रवाराहीरहस्य में भी चण्डोग्र, गह्वर, ज्वालाकुल और करंकभैरव को पूर्वादिक्रम से न्यास करने के लिए कहा है "तत्र पूर्वादिक्रमविन्यसेत्"[2]। परन्तु वज्रप्रदीप में जो क्रम दिया है, उसके अनुसार दिशाएं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर क्रम से तथा विदिशाएं ऐशान्य, आग्नेय क्रम से है। इसी प्रकार वृक्ष, दिक्पालों का वर्ण, मेघ एवं मेघ वर्ण, चैत्य वर्ण में भी थोड़ा-बहुत अन्तर लक्षित होता है। जहाँ तक मेघों का वर्ण है कहीं सभी मेघ विश्ववर्ण के हैं तथा कहीं प्रत्येक मेघ का पृथक् वर्ण बतलाया गया है। इसी प्रकार चैत्य का वर्ण भी कहीं सभी चैत्यों का वर्ण श्वेत माना है तथा अन्यत्र प्रत्येक का भिन्न-भिन्न वर्ण भी दिया है। अतः इनका सम्यक् परिचय इन विवरणों के आधार पर रचित प्राचीन मण्डल चित्रों से ही हो सकेगा। फिर भी यहाँ यथासम्भव इन श्मशानों का सही विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इन श्मशानों का क्या भौगोलिक सन्दर्भ में परिचय मिल सकता है? इनका ध्यान साधना विशेषकर तन्त्रसाधना में क्या स्थान एवं महत्त्व है तथा इनका आध्यात्मिक स्वरूप क्या है? इन सब विषयों पर पृथक् से अन्वेषण की आवश्यकता है।

---

1 श्रीसंवररहस्यं नाम साधन, धीः 26, पृ० 116

2 हेरुकाद्यवज्रवाराहीपरमरहस्यं, धीः 27, पृ० 135

तालिका-1

अष्ट-महाश्मशान

दिशाएं	श्मशान	वृक्ष	अधिपति	स्वरूप	वर्ण	दिक्पाल	वर्ण	वाहन	आयुध	नाग	वर्ण	मेघ	वर्ण	पर्वत	वर्ण	चैत्य	वर्ण
पूर्व	चण्डोग्र	शिरीष	चण्डोग्र	गजमुख	श्वेत	इन्द्र	गौर	ऐरावत	वज्र	वासुकी	पीत	गर्जित	नील	सुमेरु	भूरत्न -मय	सितवज्र	श्वेत
दक्षिण	करङ्क-भीषण	आम्र	करङ्क-भीषण	महिषमुख	कृष्ण	यम	कृष्ण	महिषारूढ	दण्ड-पाश	पद्म	सित	आवर्त	गौर	मलय	गौर	पिशुन वज्र	कृष्ण
पश्चिम	ज्वालाकुल	अशोक	ज्वालाकुल	मकरमुख	पीत	वरुण	श्वेत	मकरारूढ	पाश	कर्कोटक	श्याम	घोर	श्याम	कैलाश	सित	संज्ञावज्र	सित
उत्तर	गह्वर	अश्वत्थ	गह्वर	मनुष्यमुख	पीत	कुबेर	गौर	नरारूढ	गदा	तक्षक	रक्त	घन	श्वेत	मन्दर	श्याम	चित्तवज्र	गौर
आग्नेय	लक्ष्मीवन	करञ्ज	लक्ष्मीवन	छागमुख	श्वेत	अग्नि	रक्त	छागारूढ	अक्षमाला-कमण्डल	महापद्म	श्वेत	घूर्णित	रक्त	गन्ध-मादन	पीत	कायवज्र	रक्त
नैर्ऋत्य	घोरान्धकार	उदुम्बर	घोरान्धकार (भीषण)	शवमुख	कृष्ण	नैर्ऋति (राक्षस)	कृष्ण	शवारूढ	नर-मुण्ड	अनन्त	नील	पूरण	गौर	हिमालय	श्वेत	रत्नवज्र	कृष्ण
वायव्य	किलि-किलारव	पार्थिव (अर्जुन)	किलि-किलारव	मृगमुख	धूम्र	मरुत	श्वेत	मृगारूढ	ध्वज	कुलिक	कर्बुरी	वर्षण	श्याम	श्रीपर्वत	नील	धर्मवज्र	श्याम
ईशान	अट्टहास	न्यग्रोध	अट्टहास	वृषमुख	श्वेत	ईशान	नील	वृषभारूढ	त्रिशूल-कपाल	शङ्खपाल	पीत	चण्ड	विश्व-वर्ण	महेन्द्र	कृष्ण	वाग्वज्र	श्वेत

तालिका-2
अष्ट-श्मशान

दिशाएं	वृक्ष	श्मशान	दिक्पाल	नाग	मेघ	वर्ण
पूर्व	नागपुष्प	अट्टहास	इन्द्र	महापद्म	घोर	केसर
दक्षिण	आम्र	चरित्र	यम	कुलिक	चण्ड	नील
पश्चिम	अश्वत्थ	कोलगिरि	वरुण	कर्कोटक	घन	श्वेत
उत्तर	पुन्नाग	जयन्ती	कुबेर	शंखपाल	आवर्त	पीत
ईशान	न्यग्रोध	उज्जयिनी	रुद्र	तक्षक	गर्जित	कृष्ण
आग्नेय	करञ्ज	प्रयाग	अग्नि	पद्म	घूर्णित	विश्ववर्ण
नैर्ऋत्य	लताजटी	कर्णाट	नैर्ऋति	अनन्त	वर्षण	कृष्ण
वायव्य	उदुम्बर	देवीकोट	वायु	वासुकी	पूरण	कर्बुरी

परिशिष्ट (क)

संवरोदयतन्त्र, 17वाँ पटल

(The Saṁvarodayatantra, By S. Tsuda, pp. 123-124)

वज्रपञ्जरमध्ये तु श्मशानाष्टकभूषितम् ।
चण्डोग्रं गह्वरं चैव वज्रज्वालाकरङ्किनम् ।। 36 ।।

अट्टहास ऐशान्यां लक्ष्मीवनहुताशनम् ।
घोरान्धकारनैर्ऋत्यां वायव्यां किलिकिलारवः ।। 37 ।।

पूर्वे शिरीषाश्वत्थं कङ्केल्लिचूतवृक्षं विशेषतः ।
वटकरञ्जकांश्चैव लतापर्कटीपार्थिवम् ।। 38 ।।

इन्द्रो धनदश्चैव नागेन्द्रो यमाधिपः ।
ईशानोऽथ हुताशनो राक्षसेन्द्रोऽनिलाधिपः ।। 39 ।।

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकः पद्म एव च ।
महापद्मो हुलुहुलुः कुलिकः शङ्खपालकः ।। 40 ।।

गर्जितो घूर्णितो घोर आवर्तो घन एव च ।
पूरणश्च तथा वर्षश्चण्डो मेघाधिपा इमे ।। 41 ।।

अपरैश्च विविधैः काकोलूकगृध्रशृगालशृगालिकाः ।
चिल्लिचिल्लिकासिंहमुखव्याघ्रमुखघोराणि ।। 42 ।।

सर्पगोमुखडुण्डुभादिचमत्कारैः ।
कङ्कालशूलभिन्नलम्बार्धदग्धशिरः ।। 43 ।।

कपालजानुकवन्धदाडकमुण्डकैर्भीषणानि ।
अनेकसिद्धविद्याधरैः समयाचारयोगियोगिनीगणैः ।। 44 ।।

यक्षवेतालराक्षसादिभिर्महाकिलिकिलायमानैर्महासिद्ध्य-
र्द्धिसंप्राप्ताचार्यगणः श्मशानमध्ये द्रष्टव्यः ।। 45 ।।

परिशिष्ट (ख)

श्रीसंवररहस्यं नाम साधन

(धीः 26, पृ० 115-116)

वज्रं शक्रः कुबेरस्तु नकुलीबीजपूरकम् ।
प्रचेता नागपाशञ्च [यमो] दण्डधरस्तथा ।।

कमण्डलुं त्रिदण्डञ्च [च]क्रञ्चाभयमुद्रया ।
अक्षमालां बृहद्भानुर्नैर्ऋतिः खड्गभाजने ।।

विश्ववस्त्रसमीरश्च शूली शूलं बिभर्ति च ।
सर्वेऽमी स्वप्रियासक्ताः स्वस्वदिक्संस्थिताः क्रमात् ।।

पीतगौरसितश्यामरक्तकृष्णहरित्सिताः ।
द्विपाः खगा न(नृ)महिषच्छागप्रेतेन गोस्थि(ष्ठि)ताः ।।

देवगुह्यकनागानां यमदूतादिरा(र)क्षसाम् ।
वायूनाञ्चाथ भूतानां क्रमाद्वर्गैः समावृताः ।।

चण्डोग्रो गह्वरो ज्वालाकुलः करङ्कभीषणः ।
पूर्वादिदिक्षु वामेन दक्षिणावर्तिकेन तु ।।

लक्ष्मीवनं श्मशानं स्यात्तथा घोरान्धकारकम् ।
किलिकिलारवाऽट्टहासोऽग्न्यादिविदिक्षु च ।।

विभीताश्वत्थकंकीर्णश्चूतवृक्षास्तथैव हि ।
करञ्जः पर्क्कटीवृक्षः काकुभोऽथ वटद्रुमः ।।

द्रुमेष्वेषु स्वदिक्पालवाहनस्था महर्द्धिकाः ।
वासुकिः तक्षकः प्राग्वत्कर्कोटः पद्मकस्तथा ।।

महापद्मोऽप्यनन्तश्च कुलिकः शङ्खपालकः ।
सितः श्यामस्तथा रक्तः शुक्लो नीलोऽथ पाण्डरः ।।

कर्बुरः पीतकः प्रेष्ठस्वकुलेश्वतरोऽधरः ।
गर्जितो घूर्णितो घोर आवर्तोऽपि तथा क्रमात् ।।

घनाक्षः पूर्णतोवर्षश्चण्डश्चापि घना इमे ।
सविद्युतो विश्ववर्णा महागर्जितभीषणाः ।।

परिशिष्ट (ग)

वज्रप्रदीप टिप्पणी

The Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism
(Indo-Tibetica-III-2), p. 174-175

अथ श्मशानानि कथ्यन्ते यथानुक्रमयोगतः। पूर्वे चण्डोग्रं नाम महाश्मशानम्। शिरीषवृक्षे गजमुखो महर्द्धिकः सितः। इन्द्रो दिक्पतिः गौरः सहस्राक्षः शुक्लैरावतासनासीनः। वासुकिर्नागराजः पीतः गर्जितो मेघो विश्ववर्णः। सुमेरुः पर्वतश्च भूरत्नमयः। सितवज्रो नाम चैत्यः श्वेतः।

दक्षिणे करङ्कभीषणं नाम महाश्मशानम्। आम्रवृक्षे महिषमुखो महर्द्धिकः कृष्णः। यमो दिक्पालो महिषारूढः कृष्णः। पद्मो नागः सितः। आवर्त्तको मेघो विश्ववर्णः। मलयः पर्वतो गौरः। पिशुनवज्रो नाम चैत्यः कृष्णः ।।

पश्चिमे ज्वालाकुलं नाम महाश्मशानम्। अशोकवृक्षे मकराननो महर्द्धिकः श्वेतः। वरुणो दिक्पतिः सितः। कर्कोटको नागो रक्तः। घोरो मेघो विश्ववर्णः। कैलासः पर्वतः सितः। संज्ञावज्रो नाम चैत्यः सितः।

उत्तरे गह्वरं नाम महाश्मशानम्। अश्वत्थवृक्षे मनुष्यमुखो महर्द्धिको गौरः। कुबेरो दिक्पतिः गौरो नरवाहनः। तक्षको नागः कृष्णः। घूर्णितो मेघः विश्ववर्णः। मन्दरः पर्वतः श्यामः। चित्तवज्रो नाम चैत्यो गौरः।

ऐशान्यां लक्ष्मीवनं नाम महाश्मशानम्। वटवृक्षे गोमुखो महर्द्धिकः सितः। महेश्वरो दिक्पतिः सितो गोवाहनः। शङ्खपालो नागः पीतः। चण्डो मेघो विश्ववर्णः। महेन्द्रः पर्वतः कृष्णः। वाग्वज्रो नाम चैत्यः श्वेतः।

आग्नेय्यामट्टहासो नाम महाश्मशानम्। करञ्जवृक्षे छागाननो महर्द्धिको रक्तः। हुताशनो दिक्पती रक्तः छागासनः। महापद्मो नागो श्यामः। घनो मेघः विश्ववर्णः। गन्धमादनः पर्वतः पीतः। कायवज्रो नाम चैत्यो रक्तः।

नैर्ऋत्यां घोरान्धकारो नाम महाश्मशानम्। लतापर्कटीवृक्षे शवमुखो महर्द्धिकः कृष्णः। राक्षसो दिक्पतिः, शवासनः कृष्णः। अनन्तो नागः पाण्डुरः। पूरणो मेघो विश्ववर्णः। हेमः पर्वतः श्वेतः। रत्नवज्रो नाम चैत्यः कृष्णः।

वायव्यां किलिकिलारवं नाम महाश्मशानम्। पार्थिववृक्षे मृगाननो नाम महर्द्धिकः श्यामः। मारुतो दिक्पतिः श्यामो मृगारूढः। कुलिको नागः कर्बुरः। बर्षणो मेघो विश्ववर्णः। श्रीपर्वतो नीलः। धर्मवज्रो नाम चैत्यः श्यामः।

परिशिष्ट (घ)

हेरुकाद्यवज्रवाराहीपरमरहस्यतन्त्रम्

(धीः 27, नवमनिर्देश, पृ० 135)

त्रिनेत्रा रौद्ररूपाश्च मुण्डस्रग्दामभूषिणीः ।
चण्डोग्रं ग्रह्वरं चैव ज्वालाकुलं तथैव च ।। 90 ।।

करङ्कभैरवं तत्र पूर्वादिक्रमविन्यसेत् ।
अट्टहासं च रौद्रे च लक्ष्मीवनं हुताशने ।। 91 ।।

घोरान्धकारं महाभीमे नागे किलिकिलारवम् ।
एवं चैत्या महानामा अष्टौ च योगिनीरिति ।। 92 ।।

विरूपाद्यष्टसिद्धानां नागाष्टश्मशानवासिनीः ।
भैरवादींश्च मातृश्च एतेऽष्टश्मशानादयः ।। 93 ।।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत-हिन्दी-कोश—वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
2. भावप्रकाशनिघण्टु—सम्पा० विश्वनाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1994
3. धीः दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।

4. कालचक्रभगवत्साधनविधिः, धीः 24, पृ० 127-174, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी, 1997

5. हेरुकाद्यवज्रवाराहीपरमरहस्यतन्त्रम्, धीः 27, पृ० 95-138, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी, 1999

6. श्रीसंवररहस्यं नाम साधन, धीः 26, पृ० 107-137, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी, 1998

7. निष्पन्नयोगावली—सं० विनयतोष भट्टाचार्य, ओरियंटल इंस्टीच्यूट, बड़ौदा, 1972

8. कालचक्रपूजाविधिः—धीः 25, पृ० 165, 188, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी, 1998

9. साधनमाला, भाग-2—सम्पा० विनयतोष भट्टाचार्य, ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, 1968

10. वज्रप्रदीपटिप्पणी—इण्डो-टिबेटिका-III. 2, पृ० 174-175

11. अभिसमयमञ्जरी—दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-11, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी, 1993

12. अमरकोष रामाश्रमीटीकोपेतः, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1984

13. कालचक्रमण्डल एवं मण्डलस्थ देवपरिकर—बनारसीलाल, धीः 22, पृ० 23-38

14. बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठों का विवेचन, 1, 2, 3, 4, 5, धीः अंक 1, 3, 10, 11, 21

15. गुह्यसमाजतन्त्र—सं० विनयतोष भट्टाचार्य, ओरियंटल इन्स्टीच्यूट बड़ौदा, 1967

16. चक्रसंवरतन्त्र एवं विवृति—हस्तलेख, दु० बौ० शो० अनुभाग, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी।

17. दीघनिकाय—(हिन्दी अनुवाद) राहुल सांकृत्यायन एवं जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, लखनऊ, 1979

18. धर्मसंग्रह—(महायानसूत्रसंग्रह-1), मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1961

19. महामायातन्त्रम्—दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-10, के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ, वाराणसी, 1992

20. धर्मकोष—सं० जी० 8055, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेंगाल, कलकत्ता।

21. The Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism, (Indo-Tibetica-III. 2)—G. Tucci, Aditya Prakashan, New Delhi, 1989.

22. Śricakrasaṁvaratantra—Kazi Dawa Samdup, Aditya Prakashan, New Delhi, 1987.

23. Manuscrits Sanscrits de Sādhana Retrouvés en Chine, Journal Asiatique, 1934, 49 ff.

24. Hevajratantra, 2 Vols.—D.L. Snellgrove, London Oriental Series, Vol.-6, Oxford University, London, 1959.

25. The Saṁvarodayatantra, Ed. Shinichi Tsuda, The Hokuseido Press, Tokyo, 1974.

26. དུར་ཁྲོད་བརྒྱད་ཅེས་བྱ་བ། (अष्टश्मशान नाम), तो० 1212

27. དུར་ཁྲོད་བརྒྱད་ཅེས་བྱ་བ། (अष्टश्मशान नाम), तो० 1213

28. དུར་ཁྲོད་བརྒྱད་ཀྱི་བཤད་པ་ཞེས་བྱ་བ། (अष्टश्मशानाख्यात नाम), तो० 1216

पद्मवज्र सम्मत आकर्षणादि चार तत्त्व

—सुनीतिकुमार पाठक—

[प्रस्तुत लेख में आभिचारिक कर्म, भगवान् बुद्ध का अशरीरी सत्त्वों से सम्बन्ध, तान्त्रिक षट्कर्म और आकर्षणादि चार कर्मों को चार तत्त्व मानकर आचार्य पद्मवज्र द्वारा उनकी व्याख्या का निदर्शन किया गया है।]

आभिचारिक विधान

आकर्षण, प्रवेशन, बन्धन और वशीकार इन चार अभिचार कर्मों की पद्मवज्र (आ० ८वीं-९वीं सदी) ने तन्त्रशास्त्र में चार तत्त्वों[1] के रूप में गणना की है। सामान्यतः आकर्षणादि तान्त्रिक क्रियाएँ योगि-योगिनी के द्वारा प्रायशः अनुष्ठान की जाती हैं। उनकी भौतविज्ञान, प्राणिविज्ञान, महाकाशविज्ञान से भी समानधर्मिता है। दृष्टान्त में, भौतविज्ञान में चुम्बक और लौह की संयोगधर्मिता है। प्राणिविज्ञान या उद्भिद विज्ञान में वृक्ष और लता का सम्बन्ध है। महाकाशविज्ञान में सूर्य व चन्द्र का ग्रहणकालीन छाया, उपछाया, स्पर्श, ग्रास और मोक्षादि अवस्था हैं।

मानव-सत्ता के विकास में निसर्ग के साथ मनुष्य की घनिष्ठता अति प्राचीन काल से चली आ रही है। केवल भारतवर्ष में ऋषि लोग ही नहीं[2] बल्कि पूर्वी एशिया चीन देश

---

1. तिब्बत में सर्वतथागततत्त्वसंग्रह नाम महायानसूत्र को भारतीय पण्डित श्रद्धाकरवर्मन और लोचावा रिन् छेन् ज़ङ्पो ने 10वीं-11वीं सदी में भोटभाषा में अनुवाद किया था। तत्त्वसंग्रह महायानसूत्र में बौद्धतन्त्र के अनुसार ३७ तत्त्वों की परिगणना की गयी है। ई० 8वीं सदी में प्राचीन टीकाकार तान्त्रिक विद्वान् बुद्धगुह्य ने इस ग्रन्थ की टीका तन्त्रार्थावतार (तोहुकु 2501) लिखी थी। बाद में उनके शिष्य (ई० 8वीं-9वीं सदी) पद्मवज्र ने तन्त्रार्थावतारव्याख्यान नाम की टीका की रचना की। पद्मवज्र ने तत्त्वों की गणना इस प्रकार की थी—

   (1) हृदय, (2) मुद्रा, (3) मन्त्र, (4) विद्या, (5) अधिष्ठान, (6) अभिषेक, (7) समाधि, (8) पूजा, (9) आत्मतत्त्व, (10) देवतातत्त्व, (11) मण्डल, (12) प्रज्ञा, (13) उपाय, (14) हेतु, (15) फल, (16) योग, (17) अतियोग, (18) महायोग, (19) गुह्ययोग, (20) सर्वयोग, (21) जाप, (22) होम, (23) व्रत, (24) सिद्धि, (25) साधना, (26) ध्यान, (27) बोधिचित्त, (28) शून्यताज्ञान, (29) आदर्शज्ञान, (30) समताज्ञान, (31) प्रत्यवेक्षणज्ञान, (32) कृत्यानुष्ठानज्ञान, (33) विशुद्धधर्मधातुज्ञान, (34) आकर्षण, (35) प्रवेषण/प्रवेशन, (36) बन्धन, (37) वशीकार।
2. वैदिक मन्त्रों में भी निसर्ग के अंकदेश में विश्व की अवस्थिति कही गयी है—

और पश्चिम एशिया में ईरान देश में ईसामसीह के पूर्व युग से यह विचार प्रतिष्ठित है। जैसे—चीन देश में लाओत्से (आ० ई० पू० ६वीं सदी) का ताओ ते चिङ[1] और ईरान देश में जरथुस्त्र (आ० ई० पू० ११वीं सदी) की गाथाएँ[2] प्रमाण हैं। तन्त्रशास्त्र निसर्ग निर्भर मानव-सत्ता के विकास में अनुभवसिद्ध प्रतीकात्मक सांकेतिक प्रयोग विज्ञान है। इस प्रसंग में आकर्षणादि चार क्रियाएँ सामान्यतः 'अभिचार'[3] मानी गयी हैं। अर्थात् निसर्ग शक्ति के वशीकार के लिए क्रियावान योगी और योगिनी भिन्न-भिन्न क्रिया के द्वारा अशरीरी सत्त्वों को अपने-अपने वश में लेकर प्रयोग करते हैं[4]। सिद्धि का अभिमुखीन षट्कर्म सामान्यतः अभिचार कर्म कहलाता है।

परन्तु कई स्थानों में शास्त्रोक्त विधानों के अपप्रयोग द्वारा तन्त्र कलंकित हो जाते हैं। जिस कारण, तन्त्राचार न्यक्कार का विषय हो जाता है। तन्त्राचार जादू, टोने, कवच, ताबीज आदि से भरा हुआ है, यही धारणा आधुनिक युक्तिनिष्ठ समाज में प्रचलित है।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्घात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।। ॐ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशीः ।।

ॐ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

1. ताओ ते चिङ शब्दावली में ताओ का अर्थ 'मार्ग' है जिससे प्रारम्भ या शुरुआत में पहुँचा जा सकता है। अर्थात् जिस मार्ग से इस प्रकृति संभार के मूल स्थान में यात्रा कर सकता है वह 'ताओ' कहलाती है। वैदिक वाङ्मय में 'ऋता' तुलनीय होता है। इस सूत्राकार ग्रन्थ के रचयिता लाओत्से आनुमानिक ई० पू० 6वीं सदी में चीन देश में आविर्भूत हुए थे। चीन में बौद्धतन्त्र के विकास में लाओत्से मत की एक पृष्ठभूमि थी।
2. जरथुस्त्र ने आनुमानिक ई० पू० 1000 वर्ष में ईरान (पारस्य) देश में प्राचीन धर्म का संस्कार किया था। अवेस्ता ग्रन्थ में गाथा या स्वर्गीय गीति से उन्होंने मानव जाति के साथ निसर्ग की घनिष्ठता के द्वारा एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की। तन्त्र के विकास में ईरानीय अवेस्ता की धारणाएँ थोड़ा बहुत शामिल हैं, यह पण्डितों का अनुमान है।
3. भोट भाषा में म्ङोन स्प्योद् क्यि लस् को भी छः प्रकार का माना गया है। जैसे—ब्सद् प (मारण); द्वङ ब्येद प (वशीकरण); ग्नन् प (स्तम्भन); ग्चोद् प (विध्वंसन); स्पङ व (उत्सादन); शि वङ लस् (शान्तिकर्म) है। ये ही बौद्धेतर तन्त्रों के षट्कर्म भी हैं। भोटभाषा में 'स्प्योद्' शब्द चर्या का द्योतक है। म्ङोन स्प्योद् उससे भिन्न है।
4. बौद्धमत के अनुसार भवचक्र में प्रेतलोक (यि द्वगस्), नरक (सेम्स् चन् द्म्यल् व), देव (ल्ह), असुर (ल्ह मिन्), नर (मि) और तिर्यग् (दुद् ऽग्रो) होते हैं। फिर नौ प्रकार के सत्त्वों की अलग-अलग आवास भूमि होती है (महाव्युत्पत्ति में इनका परिगणन है, शाकाकि सं० 2288-2297 द्रष्टव्य)।

कोई-कोई तन्त्राचार को योगाचार के साथ शामिल है, यह आरोप लगाते हैं, किन्तु ब्रह्मचर्य से स्खलित अशुचि योगी व योगिनी तन्त्र-साधना में असमर्थ हैं। अभिचार साधन का अनुषंग है।

भगवान् बुद्ध और अशरीरी सत्त्व

कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर कोटि में विद्यमान सत्त्वों[1] के साथ विहार करते हुए भी सबसे उपरिस्थान में भगवान् बुद्ध का अधिष्ठान है, यह सूत्रों में दर्शाया गया है। तन्त्र वाङ्मय में बोधिचर्या को सत्त्वों के क्लेश प्रहाण के लिये मन्त्र का प्रयोग है[2]। कारण, मन्त्र रुत या अरुत होने पर भी आधिभौतिक शक्ति का बीज है। अतः यक्ष, गन्धर्व, नागादि एवं असुर-राक्षस भी मन्त्र के प्रयोग में सिद्ध होते हैं।

यह विश्वास की बात, जो भारतवर्ष में पुराकाल से चली आ रही है, वह परम्परागत संस्कारमात्र नहीं है। अधुना भौतविज्ञान के अनुसार सिद्ध है कि शब्द-तरंग अरुत गति से सदा इस सौर विश्व में प्रवहमान है। फिर यह भी भौतविज्ञानी और महाकाशविज्ञानी के द्वारा सिद्ध किया गया है कि यह भूखण्ड-मध्यस्थल में विराजित है। इस सौरविश्व में न जाने कितने स्तरों का विभाजन है। भगवान् बुद्ध की भगवत्ता से इन विभिन्न स्तरों में सत्त्वों की चित्त चैतसिक गति अनायास से चली थी। यह ध्यान समाधि समापत्ति तथा योगतन्त्र से साधनीय है। सर्वसत्त्वसमचित्त होकर बोधिचर्या ही अद्भुत आश्चर्य

---

1. महाव्युत्पत्ति में उन तीन लोक धातु पर विराजमान देवताओं के नाम इस प्रकार हैं (शाकाकि संस्करण 3075-3083) भौम (स ब्ल), अन्तरिक्षवासिनः (बर् नङ् ल ग्नस् प), चतुर्महाराजकायिक (ग्र्यल् छेन् बशि़इ रिस्), त्रायस्त्रिंश (सुम् चु र्च़् ग्सुम् प), याम (ऽथब् ब्रल), तुषित (द्गऽ ल्दन्), निर्माणरति (ऽफ्रुल् द्गऽ), परनिर्मित-वशवर्तिन् (ग्श़न्ऽफ्रुल् द्वङ् ब्येद्)। फिर प्रथम ध्यान (1), द्वितीय ध्यान (2), तृतीय ध्यान (3) और चतुर्थ ध्यान (4) देवताओं के नाम भी महाव्युत्पत्ति में (3084-3100) उपलब्ध हैं। इनके अलावा कुशलभूमिक सात देवता एवं अरूपधातु में चार समापत्ति के साथ ग्यारह नाम महाव्युत्पत्ति में हैं। (शाकाकि स० 3101-3113) और 61 लौकिक देव-देवियों के नाम भी हैं (वही, सं० 3114-3175)।
2. महाव्युत्पत्ति में देवता के अलावा नौ प्रकार के मन्त्रविद् सत्त्वों के नाम उल्लेख हैं। यथा—नाग(क्लु) यक्ष (ग्नोद् स्ब्यिन्), गन्धर्व (द्रि स़), असुर (ल्ह म यिन्), दैत्य (ल्ह म यिन् दङ् ऽदोम न स्ब्यिन् ब्येद् मइ बु) गरुड़ (नम् म्खऽल्दिङ्), किन्नर (मि ऽम् चि), महोरग (ल्तो ऽफ्ये छेन् पो), कुम्भाण्ड/कूष्माण्ड (ग्रुल् बुम्)।

और अचिन्त्य है। पारमितानय और मन्त्रनय से बोधिचित्त उत्पन्न करना ही बौद्धमात्र का साधनीय है।

यह बात ध्यान में रखने पर बौद्ध वाङ्मय में तन्त्र और सूत्र में भेद प्रकट नहीं होता है। अथवा श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान, बोधिसत्त्वयान तथा मन्त्रयान साधकों के अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार लोकयात्रा के लिये यानभेद है। जैसे—सारनाथ में तीर्थयात्रियों के लिए कितनी तरह की गाड़ियाँ चल रही हैं। यात्री अपने-अपने आर्थिक, कायिक और मानसिक सामर्थ्य के अनुसार अलग-अलग गाड़ियों के साधनों को लेते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इस विचार पर विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र के छठवें परिवर्त्त पर ध्यान दिया जाय[1] जो भोटभाषा से पुनरनूदित संस्कृत वाङ्मय में इस प्रकार है—

कुमारभूत मञ्जुश्री ने लिच्छवि विमलकीर्ति को पूछा था—

हे सत्पुरुष! बोधिसत्त्व को सभी सत्त्वों को किस प्रकार देखना चाहिए ? विमलकीर्ति ने सुगम उत्तर दिया—हे मञ्जुश्री! बोधिसत्त्व को सभी प्राणियों को उसी प्रकार देखना चाहिए, जिस प्रकार एक विज्ञ पुरुष (ज्ञानी व्यक्ति) जल में चन्द्रमा की परछाई को देखता है। अथवा जिस प्रकार एक मायाकार (जादूगर) माया से निर्मित मनुष्य को देखता है। मञ्जुश्रीमूलकल्पतन्त्र में यही बात इस प्रकार है—

अवलोकित-चन्द्रस्य बोधिसत्त्वस्य धीमतः ।
वज्रपाणेस्ततो मुद्रा यक्षेन्द्रस्य प्रकीर्तिताः ।। (37.5)

जिन बोधिसत्त्वों ने चन्द्र का अवलोकन किया है, उनके द्वारा यक्षश्रेष्ठ वज्रपाणि की मुद्रा का अनुभव होता है। परन्तु यक्ष, यक्षी, नाग, नागिन, किन्नर, किन्नरी, पिशाच, पिशाची, राक्षस, राक्षसी सुरलोक में विराजित योषितों, अमानुष प्रभृति कामभव, रूपभव, अरूपभवावचर सकल जन्तुओं की मुद्राएँ पृथक्-पृथक् होती हैं। अतः जिस बोधिसत्त्व के हृत्पद्म में जैसा चन्द्राभास प्राप्त है, उसका प्राणियों या सत्त्वों से भेद मुद्रा-भेद मात्र का ज्ञान होता है। इसलिए मुद्रा-भेद के कारण मन्त्रों के भी विविध प्रकार होते हैं।

---

1. विमलकीर्ति-निर्देशसूत्रम्, भिक्षुप्रासादिका एवं लालमणि जोशी सम्पादित और संस्कृत उद्धार हिन्दी अनुवाद सहित, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, बुद्धाब्द 2524, पृ० 128

मन्त्रास्तु विविधाकारा नानाकर्मसमाधिकाः ।
राजकुले मानिकुले चापि तेषां मुद्रा पृथक् पृथक् ।। (म० मू० 37.10)

अतः सुगत के द्वारा आवाहन किये गये मुद्रा एवं मन्त्र कर्मों में सुफल दान करते हैं। मन्त्र और मुद्रा में कुशलता से विनायक (क्रियाशील) वज्रधर पश्चाद् धावन नहीं करते हैं—

सर्वे मुद्रा समाख्याता अपराश्च सुगताह्वया ।
पृथक् पृथक् मन्त्रेषु लौकिकेषु ससौगते ।।

मुद्रयाऽसहितो मन्त्रो दीप्तो भवति कर्मसु ।
मुद्राक्षेपादिकुशलं नानुयान्ति विनायकाः ।।

(मञ्जुश्रीमूलकल्प, दरभंगा सं०, पृ० 323, 1964)

तान्त्रिक षट्कर्म

अतः मन्त्र के प्रयोग से कल्याणकर लोकहित के लिये वज्रधर या तन्त्रसाधक औपयिक कर्मों का साधन करते हैं। फिर आकर्षणादि आभिचारिक कर्म भी लोकहित के लिये प्रयोग किये जाते हैं। इससे तान्त्रिक षट्कर्मों[1] का प्रयोग तन्त्रशास्त्र में आलोचित है। यथा मारण, वशीकरण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन (=उत्सादन) और शान्तिकर्म या स्वस्त्ययन। बौद्धेतर तन्त्रों में विशेषकर शाक्त तन्त्रों के अनुसार इन कर्मों के देवता, काल (ऋतु व अहोरात्र में प्रसिद्ध समय), आसन और पाँच भौतिक तत्त्वों का निर्धारण निम्न प्रकार है—

षट्कर्म	देवता	ऋतु	अह्न/सन्धि का काल	तत्त्व	आसन
मारण	काली	शरत्	अर्धरात्र	अग्नि	भद्रकासन
वशीकरण	वाणी	वसन्त	पूर्वाह्न	वह्नि	स्वस्तिकासन

1. योगशास्त्र में भी घट-शोधन के लिए षट्कर्म सम्पादन किया जाता है। जैसे—धौति, वस्ति, नेति, लौली, त्राटक और कपालभाति, इनके बारे में हठयोगप्रदीपिका ग्रन्थ में सविस्तार व्याख्यान मिलता है।
फिर, स्मृतिशास्त्र में षट्कर्म इस प्रकार हैं— यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह।

विद्वेषण[1]	ज्येष्ठा	ग्रीष्म	मध्याह्न	व्योम	कुक्कुटासन
स्तम्भन	रमा	शिशिर	प्रदोष	पृथ्वी	विकटासन
उच्चाटन	दुर्गा	प्रावृट्	अपराह्न	वायु	वज्रासन
शान्तिकर्म व स्वस्त्ययन	रति	हेमन्त	प्रभात	जल	पद्मासन

बौद्धतन्त्रों में मण्डल और मुद्रा के साथ आकर्षणादि क्रियाएँ सन्निवेशित हैं। युगनद्ध मुद्रा में आकर्षणादि क्रियाएँ सुरतस्पृहा विवर्जित हैं। बौद्धतन्त्रों में मूलापत्ति का ज्ञान साधक के लिये अवश्य होना चाहिए। कारण सुरतस्पृहा से वशीकारादि कर्म प्राणिमात्र के शरीर को जीर्ण और दीर्ण बनाते हैं। फिर विद्वेषणादि राग, द्वेष मोहादि से सम्बन्धित हैं। इससे भी सतर्क होना चाहिए। मारण स्तम्भनादि कर्म हानिकारक हैं।

थेरवाद परम्परा में भी पाराजिकधम्मा में पातिमोक्खसूत्र की टीका में मैथुनधम्मो, गामधम्मो, वसन्तधम्मो को दुष्ठुल्ल, कोक्किच्चकम्म, ओदनान्तिकरहस्य आदि शब्दों से निन्दा की गयी है। यह शरीरधर्म के विपरीत आचरण है। इसलिए पाँच मकारादि के अनुकल्प व भिन्न-भिन्न अनुषंग विधान तन्त्रशास्त्रों में उल्लिखित हैं। जैसे—लिङ्गपुष्प और योनिपुष्प के समायोग से योगी या योगिनी द्वारा मैथुनधर्म सम्पादन करने की अवस्था है। पूजा तत्त्व में बाह्यपूजा, आन्तरपूजा दो प्रकार कहे गये हैं। बाह्यपूजा प्रतीकात्मिका, आन्तरपूजा योगिसाध्य है। बाह्यपूजा सामान्यतः लोकप्रसिद्ध क्रिया से सम्बन्धित है। जिस कारण लोकसमाज के आर्थिक, शिल्पवाणिज्यिक संगठन के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है। परन्तु आन्तरपूजा में योगी व योगिनी रहसि एकान्त में अपनी-अपनी इष्टसिद्धि के लिये पूजा का विधान करते हैं। पूजा क्रम के अनुसार अनायासलभ्य उपचारों और वस्तुओं का आहरण कभी-कभी आवश्यक हो सकता है। वे मुख्य नहीं हैं। अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार समर्थ योगी व योगिनी आकर्षणादि तत्त्वों की सन्निधि से क्रम सम्पादन करते हैं।

---

1. 'विध्वंसन' का भी प्रयोग मिलता है। किन्तु मारण, उत्सादन, उच्चाटन के अलावा 'विद्वेषण' क्रमबद्ध होता है।

आचार्य पद्मवज्र के व्याख्यान

आचार्य पद्मवज्र ने गुह्यसिद्धि में तत्त्व का परिचय इस प्रकार स्थापन किया है। तत्त्व कल्पना के बाहर सभी प्रकार की उपाधि से विवर्जित है। वह कल्याणकर, श्रेष्ठ, द्वन्द्वहीन, निराभास और निर्मित नहीं है। अर्थात् अकृत्रिम है। पानी में तेल का बिन्दु जिस प्रकार फैलता है, तत्त्व सम्बन्धित ज्ञान विकल्प के साथ युक्त होने पर शास्त्रीय विक्रिया के कारण विस्तारित होता है। अत: सांवृतिक भावना आदि से तत्त्व की सिद्धि करने के प्राक् तत्त्व को जानना चाहिए। पश्चात् तत्त्व के उद्दीपन से प्रबुद्ध मन लेकर व्रत के साथ कार्य करना होगा।

इस दृष्टि से पद्मवज्र ने इन चार तत्त्वों का इस प्रकार व्याख्यान किया—

आकर्षण—क्रियाविधि के अनुसार इसके दो प्रकार हैं।

(१) धर्मधातु मण्डल में अकनिष्ठ देवलोक हैं योगतन्त्र के अनुसार वहाँ से देव या इष्ट का आवाहन करना होगा।

(२) पृथ्वी पर लोकधातु में दिशाओं को प्रभास्वर करते हुए इष्ट व देवता का आवाहन करना ही आकर्षण-तत्त्व है।

प्रवेषण—(कहीं-कहीं प्रवेशन का भी प्रयोग है।) इसके तीन प्रकार होते हैं। जैसे—

(१) मण्डल में माण्डलिक का अध्यास मण्डल-प्रवेश कहलाता है। यह तत्त्व है।

(२) फिर साध्य और साधक का सालोक्य प्रवेश होता है।

(३) इस प्रकार से शिष्य पर आचार्य के शक्तिपात को प्रवेषण माना जाता है।

बन्धन—साध्य और साधक को योगबन्ध या सायुज्य का अनुभव बन्धन तत्त्व है। यह मेल बन्धन है।

वशीकार—उपर्युक्त तीन क्रियाओं से संवलित तत्त्व योगतन्त्र के अनुसार साध्य और साधक दोनों वशीकारभाव से संपृक्त होते हैं। जिससे साधक की अभीष्ट सिद्धि[1] सुगम होती है। यह उत्तम साधनौपायिक कर्म है। साधक के चित्त में आनन्द विराज करता है।

साधनमाला में ये चार तत्त्व मन्त्र के साथ इस प्रकार मिलते हैं। ॐ वज्रांकुशी आकर्षय जः। ॐ वज्रपाशी प्रवेषय हूँ। ॐ वज्रस्फोट बन्धय वं। ॐ वज्रावेशे वशीकुरु होः। (110, पृ॰ 230-231)

अत एव एकत्र ॐ जः हूँ वं होः मन्त्र के प्रयोग से आकर्षणादि चार तत्त्वों का शोधन किया जाय।

•

1. तंग्युर संकलन में ज्ञानवज्र रचित कतिपय सिद्धिविषयक भोट भाषा में रूपान्तरित ग्रन्थ हैं (तोहुकु कुञ्जिका संख्या 2960-2995) उनमें से वाक् सिद्धि (तो॰ सं॰ 2963-2964), तीर्थिकविद्यामन्त्र (वि)ध्वंसन (तो॰ 2978), ग्रहमोचनादि ग्रन्थ (तो॰ 2979-2982), ब्रह्मग्राह, राक्षसग्राह, पिशाचग्राह, नागग्राह, विनायकग्राहमोचनादिमन्त्र (क्रम से तो॰ 2983-2996) द्रष्टव्य।

इस प्रकार दीपंकरभद्र (दीपंकर श्रीज्ञान से भिन्न व्यक्ति) के भी कतिपय ग्रन्थ तंग्युर संकलन में संगृहीत है। किन्तु ज्ञानवज्र और दीपंकरभद्र के द्वारा रचित ग्रन्थ किस समय भोट भाषा में रूपान्तरित हुए थे एवं किस-किसने भोट भाषा में रूपान्तर किया था, यह अनुल्लिखित है। इन विषयों पर स्वतन्त्र अध्ययन आवश्यक है।

पीठ-स्थान मीमांसा

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

[यहाँ कुब्जिकामत के द्विविध संस्करणों का परिचय देकर उसमें वर्णित 24 पीठों की चर्चा के प्रसङ्ग में पीठ शब्द की व्याख्या कर तन्त्रालोक में एवं विभिन्न बौद्ध तन्त्रों में वर्णित पीठों और उनके भेदों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। आगे बताया गया है कि अनेक बौद्ध तन्त्रों में और कुब्जिका मत में भी पीठों की संख्या 24 होते हुए भी इनमें परस्पर कोई समानता नहीं है, किन्तु तन्त्रालोक की एक सूची में यह आनुपूर्वी से उपलब्ध है। ''शाक्त पीठाज्'' में प्रकाशित पीठ-निर्णय और उसके विभिन्न परिशिष्टों के आधार पर इन सूचियों की समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है।]

कुब्जिकामत और बौद्ध तन्त्रों में 24 पीठ वर्णित हैं, इसकी सूचना मात्र हमने अपने बृहद् ग्रन्थ ''तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन'' (पृ० 680) में दी थी। इस विषय पर वहाँ विशेष विचार न हो सका। उस कमी को पूरा करने के लिए हम यह निबन्ध प्रस्तुत कर रहे हैं।

कुब्जिकामत के दो संस्करण हैं—एक 3500 श्लोक वाला और दूसरा 6000 श्लोक वाला। इनमें से षट्साहस्री संहिता के प्रारम्भ के 5 पटल हालैण्ड से रोमन लिपि में सन् 1982 में छपे थे। इसका सम्पादन हालैण्ड के ही तन्त्रशास्त्र के विद्वान् डॉ० जे० ए० शोतेरमन ने किया था। इस संस्करण की विशेषता यह है कि यहाँ परिशिष्ट में प्रस्तार, गह्वर, मालिनी, शब्दराशि जैसे शब्दों पर विस्तार से सचित्र प्रकाश डाला गया है। यह दुःख का विषय है कि ये अल्पायु हो गये। 3500 श्लोक वाला कुब्जिकामत कुलालिकाम्नाय के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1998 में इंस सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हालैण्ड से ही हो चुका है। उक्त विद्वान् ने इसका भी सम्पादन हालैण्ड के ही ख्यातनामा अपने सहयोगी विद्वान् डॉ० तून गान्द्रियान के साथ मिलकर किया था।

इस ग्रन्थ के 22वें पटल के 23-46 श्लोकों में 24 पीठों की नामावली दी गई है। इसकी समीक्षा करने से पहले हम यहाँ अब तक परिज्ञात पीठ-सम्बन्धी विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं।

महासंवित् (परमश्रेष्ठ ज्ञान) की जहाँ अनायास प्राप्ति होती हो, योगियों के द्वारा निषेवित उस श्रेष्ठ स्थान को पीठ कहा जाता है। तन्त्रालोक (15.82-96) और उसकी

विवेक टीका में नैशसंचार नामक शास्त्र के प्रमाण से पीठ, उपपीठ, सन्दोह, उपसन्दोह, क्षेत्र और उपक्षेत्र वर्णित हैं। शास्त्रों में याग-योग्य स्थान को पीठ कहा गया है। यह बाह्य और आन्तर के भेद से द्विविध है। बाह्य जगत् और आन्तर देह के भीतर के विभिन्न अवयवों में इनकी स्थिति मानी गई है। पीठ, उपपीठ और सन्दोह के तीन-तीन भेदों को तथा उपसन्दोह, क्षेत्र और उपक्षेत्र के आठ-आठ भेदों को मिलाकर यहाँ 32 पवित्र स्थानों (पीठों) की नामावली दी गई है। यहीं (15.86) अर्धपीठ की भी चर्चा मिलती है। इसका नाम अर्बुद है। विवेककार जयरथ इसको मान्यता नहीं देते, किन्तु कौलज्ञाननिर्णय (8.22) में अर्धपीठ के रूप में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। तन्त्रालोक और उसकी विवेक टीका के 29वें आह्निक में भी बाह्य और आन्तर पीठों की चर्चा मिलती है। इन सबका परिचय हम नित्याषोडशिकार्णव (नि० षो०) के संस्कृत उपोद्घात (पृ० 78-83) और ''तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन'' के शाक्त (त्रिपुरा) अधिकार (पृ० 676-682) में दे चुके हैं।

अनेक बौद्ध तन्त्रों में भी इन पीठ-स्थानों की चर्चा मिलती है। वसन्ततिलक आदि आठ बौद्ध तन्त्रों में ऊपर के छः विभागों के अतिरिक्त मेलापक, उपमेलापक, श्मशान और उपश्मशान विभागों के अन्तर्गत 24 पीठ-स्थानों की नामावली दी गई है। इसी तरह से हेवज्रतन्त्र में पीलव और उपपीलव विभागों का भी समावेश कर द्वादश भूमियों के रूप में 32 पीठ-स्थान चर्चित हैं। इन सबकी भी संक्षिप्त चर्चा हमने उक्त दोनों स्थलों पर की है। इनका विशद विवेचन तिब्बती संस्थान, सारनाथ की षाण्मासिक शोधपत्रिका 'धीः' के प्रथम अंक (पृ० 137-148) में प्रकाशित डॉ० बनारसी लाल के ''बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन'' शीर्षक निबन्ध में देखा जा सकता है। 'धीः' के 3, 10, 11 और 21वें अंकों में भी इसी शीर्षक से विद्वान् लेखक के अन्य चार निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। इनमें से तृतीय अंक में चित्त, वाक् और काय [1]चक्रों में स्थित 24 आन्तर और बाह्य पीठों की तथा उनमें विद्यमान डाकिनियों[2], नाड़ियों, वीरेश्वरियों आदि की भी नामावली दी गई है। 10वें अंक में 24 पीठों में तथा हेरुक-मण्डल में स्थित वीरेश्वरियों का परिचय दिया

1. डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची के द्वारा ''दोहाकोश'' के आधार पर वर्णित 24 पीठों की और प्रो० जी० टुच्ची के द्वारा ''इण्डो-तिबैटिका'' में वर्णित चित्त-वाक्-काय मण्डलों में स्थित 24 पीठों की संक्षिप्त चर्चा नि० षो०, उ० (पृ० 81 टि०) में भी देखी जा सकती है।
2. डाकिनियों, नाड़ियों और वीरेश्वरियों की तुलना कुब्जिकामत, नि० षो० और पीठनिर्णय में वर्णित आन्तर और बाह्य स्थानों एवं शक्तियों से की जा सकती है।

गया है। इसी तरह 11वें अंक में संवर-मण्डल में स्थित 24 वीरेश्वरों[1] का स्वरूप निदर्शित है। पीठों की भौगोलिक स्थिति और उनके माहात्म्य की भी यहाँ प्रसंगवश चर्चा की गई है। 21वें अंक में 64 एवं 48 संख्या के पीठों का परिचय दिया गया है। इन सभी निबन्धों के लेखक डॉ० बनारसी लाल ने किन्नौर, हिमांचल प्रदेश से हर वर्ष वैशाख (बुद्ध) पूर्णिमा पर निकलने वाली "विद्या भारती" पत्रिका के सन् 1992 में प्रकाशित 12वें अंक में अधिक विस्तार से इन सब विषयों को प्रस्तुत किया है। विद्वान् लेखक ने यहाँ पीठों की देह-मण्डल के साथ भौगोलिक स्थिति से परिचित कराने का भी प्रयास किया है। ओड्र से उड़ीसा और ओडियान से कश्मीर का ग्रहण किया जाय, इससे हम भी सहमत हैं। कुछ विद्वान् ओडियान से उड़ीसा का ग्रहण करते हैं। यह उचित प्रतीत नहीं होता। हम देखते हैं कि पूरे भारतवर्ष में इन पीठों का विस्तार था।

हमारी समझ में छन्दोह और उपछन्दोह के स्थान पर सन्दोह और उपसन्दोह शब्द ही सर्वत्र होने चाहिये। क्षेत्र[2] के स्थान पर क्षत्र शब्द का प्रयोग तो स्पष्ट ही लिपिदुष्ट पाठ है। पीलव[3] और उपपीलव शब्द उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में कहीं देखने को नहीं मिलते। तन्त्रालोक में सूचित अर्धपीठ अर्बुद की बौद्ध तन्त्रों में वर्णित 24 पीठों की नामावली में चतुर्थ पीठ के रूप में तथा हेवज्रतन्त्र वर्णित 32 पीठों की नामावली में उपक्षेत्र के रूप में गणना की गई है। तन्त्रालोक में पीठों की संख्या तीन ही मानी गई है। हेवज्रतन्त्र में जालन्धर का समावेश कर पीठों की संख्या चार गिनाई गई है और साधनमाला में चार पीठों के रूप में उड्डियान, जालन्धर, कामरूप और श्रीहट्ट का परिगणन किया गया है। वसन्ततिलक आदि आठ बौद्ध तन्त्रों में चतुर्थ पीठ के रूप में अर्बुद समाविष्ट है, यह अभी-अभी बताया गया है। विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में पीठों की संख्या पाँच, छः, आठ, चौबीस, बत्तीस, अड़तालीस, इक्यावन, चौसठ और एक सौ आठ बताई गई है। इनकी ऊपर चर्चा हो चुकी है। नि० षो० के उपोद्घात (पृ० 80-83) और 'धीः' के ऊपर चर्चित विभिन्न अंकों में इनका विशद विवरण दिया गया है। [4]शारदातिलक की राघवभट्ट

---

1. वीरेश्वरी शब्द से शक्तिचक्र का तथा वीरेश्वर शब्द से भैरवों का बोध किया जा सकता है। डाक-डाकिनी शब्दों से भी हम इनको जान सकते हैं।
2. नि० षो०, उ० (पृ० 79, टि० 3) देखिये।
3. पीलव-उपपीलव शब्द संस्कृत के परिज्ञात कोशों में उपलब्ध नहीं हैं। भोट भाषा में (འཐུང་གཅོད།) थुङ्-चोद् दिया है। अर्थ स्पष्ट नहीं है। थुङ का अर्थ पीना है और चोद का काटना या छोड़ना।
4. नि० षो०, उ० (पृ० 82) देखिये।

कृत टीका में 64 पीठों की नामावली दी गई है और अनेक पुराणों में वर्णित 108 पीठों की नामावली लखनऊ से प्रकाशित "संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास" नामक ग्रन्थ के 11वें खण्ड में प्रकाशित डॉ० करुणा एस० त्रिवेदी के "पुराणगत योग एवं तन्त्र" शीर्षक निबन्ध (पृ० 541-547) में देखी जा सकती है। "शाक्त पीठाज्" नामक ग्रन्थ के द्वितीय परिशिष्ट में भी यह सूची "नामाष्टोत्तरशतम्" शीर्षक से पाठभेदों के साथ प्रस्तुत की गई है। मत्स्यपुराण और देवीभागवत के अतिरिक्त यहाँ पद्मपुराण सृष्टिखण्ड और स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड में उपलब्ध नामावली भी दी गई है।

आजकल इक्यावन पीठों की नामावली सर्वाधिक प्रचलित है। इन पीठों का सम्बन्ध सती के पृथिवी पर पतित 51 अंगों से माना जाता है। योगिनीहृदय, प्रपञ्चसार-प्रयोगक्रमदीपिका, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों में इनकी नामावली मिलती है। इस विषय का अधिक विस्तार से सांगोपांग वर्णन डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार के ऊपर सूचित ग्रन्थ "शाक्त पीठाज्" में देखने को मिलता है। विद्वान् लेखक ने 'पीठनिर्णय' (महापीठनिरूपण) नामक एक छोटे से ग्रन्थ को आधार बनाकर इन इक्यावन शाक्त पीठों के स्वरूप पर विशद प्रकाश डाला है। यहाँ देवियों और पीठों के नामों के अतिरिक्त सती के किस अंग से किस पीठ का प्रादुर्भाव हुआ, इसकी सूचना देते हुए, देवी के स्वरूप का और उसके भैरव का भी परिचय दिया गया है। यहाँ संयोजित छः परिशिष्टों ने इस ग्रन्थ के महत्त्व को बढ़ा दिया है।

प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने 'पीठनिर्णय' का परिचय देते हुए अनेक विषयों की चर्चा की है। ग्रन्थ के मूल स्वरूप का उद्धार करने के बाद यहाँ प्रथम परिशिष्ट में ग्रन्थ के अन्य दो संस्करणों को भी प्रकाशित किया गया है। द्वितीय परिशिष्ट में मत्स्य, देवीभागवत, पद्म और स्कन्द पुराणों में वर्णित देवी के अष्टोत्तरशत नाम पाठान्तरों के साथ संकलित हैं। प्रसंगवश इसकी चर्चा ऊपर भी आई है। तृतीय परिशिष्ट में दक्षयज्ञ-विध्वंस की कथा के मूल की ऋग्वेद, गोपथब्राह्मण, महाभारत, भागवतपुराण और कूर्मपुराण के वचनों को उद्धृत कर चर्चा की गई है। चतुर्थ परिशिष्ट में कृष्णानन्द के तन्त्रसार की तिथि पर विचार किया गया है। पाँचवें परिशिष्ट में अकारादि क्रम से लगभग 500 पीठों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और अन्तिम छठे परिशिष्ट में शिव और शक्ति के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

चतुष्पीठ तन्त्र[1] नामक ग्रन्थ के विषय में हमें इतना जान लेना चाहिये कि कामरूप आदि चार पीठों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तो आत्मपीठ, परपीठ, योगपीठ और तत्त्वपीठ नामक चार प्रकरणों के कारण इसको यह नाम दिया गया है[2]।

पीठ-सम्बन्धी इतनी जानकारी देने के बाद अब हम कुब्जिकामत की 24 पीठों वाली नामावली के मूल पाठ को देकर उसकी समीक्षा करना चाहते हैं। वहाँ का मूल पाठ इस प्रकार है—

अट्टहासे[3] कदम्बस्थां सौम्यास्यां वज्रधारिणीम् ।
महाघण्टसमोपेतां प्रणमामि शिवङ्करीम् ।। 23 ।।

चरित्रायां करञ्जस्थां कृष्णाख्यां(स्यां) शक्तिधारिणीम् ।
महाबलसमोपेतां प्रणमामि सुसिद्धिदाम् ।। 24 ।।

अग्निकेन समोपेतां दण्डहस्तां नगौकसाम् ।
कोलागिर्यै महालक्ष्मीं नौमि लक्ष्मीविवर्धनीम् ।। 25 ।।

ज्वालामुखीं श्रीजयन्त्यां निम्बस्थां खड्गधारिणीम् ।
महाप्रेतसमोपेतां नौमि सर्वार्थसिद्धिदाम् ।। 26 ।।

---

1. 'धी:' का प्रथम अंक (पृ० 137) देखिये। नामसंगीति के टीकाकार रविश्री ने चतुष्पीठ पद की इस प्रकार व्याख्या की है—"परपीठेति प्रज्ञोक्ता आत्मपीठमुपायकम्। अनयोरद्वयीभावो योगपीठमिति स्मृतम् ।। तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत्। सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ।।" चतुर्थ तत्त्वपीठ को यहाँ गुह्य और सहज नाम भी दिया गया है। इस प्रसंग में "तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन" (पृ० 705 टि०) भी देखिये।
2. ब्रह्मयामल में विद्या, मन्त्र, मुद्रा और मण्डल नामक चार पीठों में तन्त्रों को बाँटकर विद्यापीठ और मुद्रापीठ के प्रतिपादक तन्त्रों के नाम गिनाये गये हैं। स्वच्छन्दतन्त्र अपने को चतुष्पीठ-संहिता कहता है। इसका अभिप्राय यह है कि तन्त्रों के क्रिया, चर्या आदि विभागों की तरह विद्या, मुद्रा आदि विभाग भी मान्य रहे हैं। उनके अलग-अलग तन्त्र भी उपलब्ध थे। स्वच्छन्दतन्त्र में इन सभी विषयों का समाहार किया गया था। हमें अनेक बौद्ध तन्त्रों में भी क्रिया, चर्या आदि सभी विषयों का वर्णन मिलता है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस चतुर्विध पीठ विभाग का ऊपर प्रदर्शित चतुष्पीठतन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रसंग में "तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन" (पृ० 30-32) का पीठ विभाग भी देखिये।
3. पीठनिर्णय (महापीठनिरूपण) में भी इसी तरह से पीठ-स्थान, देवी, देवीस्वरूप एवं भैरव वर्णित हैं। हम समझते हैं कि बौद्ध तन्त्रों में डाक-डाकिनी, वीरेश्वर-वीरेश्वरी, नाडी आदि शब्दों के माध्यम से भी इन्हीं विषयों का वर्णन किया गया है।

अश्वत्थस्थां महामायामुज्जैन्यां पाशधारिणीम् ।
महाकालसमोपेतां नौमि सर्वार्थसिद्धिदाम् ।। 27 ।।

उदुम्बरतलावस्थां वायुवेगां ध्वजायुधाम् ।
प्रयागे पवनोपेतां नौमि शत्रुविनाशिनीम् ।। 28 ।।

वाराणस्यां तु तालस्थामूर्ध्वकेशीं गदायुधाम् ।
प्रणम्य शिरसा देवीं शङ्करीं शङ्करान्विताम् ।। 29 ।।

कर्णमोटीं वटस्थां तु सशूलां हेतुकान्विताम् ।
श्रीकोटे श्रीप्रदां नौमि राज्यसम्पददायिनीम् ।। 30 ।।

विरजायामम्बिकादेवीं मुद्रापट्टिशधारिणीम् ।
अनलेन समोपेतां प्रणमामि जयावहाम् ।। 31 ।।

ऐरुड्यामग्निवक्त्रां तु वज्रशक्तिधरां शुभाम् ।
घण्टारवसमोपेतां नमामि रिपुनाशिनीम् ।। 32 ।।

मुषलायुधहस्तां तु महाजङ्घसमन्विताम् ।
नमामि शत्रुभङ्गार्थे पिङ्गाक्षीं हस्तिनापुरे ।। 33 ।।

एलापुरे खरास्यां तु पाशहस्तां महाबलाम् ।
गजकर्णसमोपेतां नौमि दुष्टप्रमर्दनीम् ।। 34 ।।

काश्मर्यां चैव गोकर्णां मुद्रालकुटधारिणीम् ।
तडिज्जङ्घसमोपेतां नमामि रिपुमर्दनीम् ।। 35 ।।

करालेन समोपेतां नमाम्यङ्कुशधारिणीम् ।
क्रमणीं मरुदेशे तु त्रैलोक्याकृष्टिकारिकाम् ।। 36 ।।

रोमजङ्घसमोपेतां नगरे तु हलायुधाम् ।
चैत्रकच्छनिवासां तु नमामि धनसिद्धये ।। 37 ।।

कुम्भकेन समोपेतां खट्वाङ्गकरभूषिताम् ।
नमामि पापशुद्ध्यर्थं चामुण्डां पुण्ड्रवर्धने ।। 38 ।।

पुरस्तीरे प्रसन्नास्यां वज्रशृङ्खलधारिणीम् ।
नमामि त्रिजटोपेतां भेदस्तम्भनकारिकाम् ।। 39 ।।

पृष्ठापुरे विद्युन्मुखीं दण्डशक्त्यायुधोद्यताम् ।
नमामि घनरवोपेतां भेदजृम्भन(ण)कारिकाम् ।। 40 ।।

उल्कामुखसमोपेतां कुहुद्यां(ड्यां) तु महाबलाम् ।
मुद्रालकुटधारिण्यां(णीं) नौमि दुष्टाङ्गभञ्जनीम् ।। 41 ।।

पिशिताशसमोपेतां नौमि कट्टारिकोद्यताम् ।
सोपारे अग्निवक्त्रां तु अमित्रपशुदारिणीम् ।। 42 ।।

क्षीरिके लोकमातां तु खड्गहस्तां नमाम्यहम् ।
महामेरुसमोपेतां महातार्तिनिकृन्तनीम् ।। 43 ।।

वज्रायुधधरां सौम्यां भीमाननसमन्विताम् ।
स्तम्भाकृष्टिकरीं देवीं मायापुर्यां तु कम्पिनीम् ।। 44 ।।

महाक्रोधसमोपेतां पूतनाम्प्रातिकेश्वरे ।
गदाहस्तायुधां नौमि ताडनाकृष्टिकारिकाम् ।। 45 ।।

राजगृहे भग्ननासां महाकर्णसमन्विताम् ।
वज्रशक्तिधरां नौमि अशेषफलदायिकाम् ।। 46 ।।

इस नामावली को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पीठों की संख्या में समानता होते हुए भी यह नामावली बौद्ध तन्त्रों में निर्दिष्ट नामावली से नहीं मिलती। तन्त्रालोक में दी गई आन्तर पीठों की नामावली से यह अवश्य बहुत-कुछ मिलती है। वहाँ का पूरा पाठ इस प्रकार है—

अट्टहासं शिखास्थाने चरित्रं च करन्ध्रके ।
श्रुत्योः कौलगिरिं नासारन्ध्रयोश्च जयन्तिकाम् ।।

भ्रुवोरुज्जयिनीं वक्त्रे प्रयागं हृदये पुनः ।
वाराणसीं स्कन्धयुगे श्रीपीठं विरजं गले ।।

एडाभीमुदरे हालां नाभौ कन्दे च गोश्रुतिम् ।
उपस्थे मरुदेशं च नगरं पौण्ड्रवर्धनम् ।।

एलापुरं पुरस्तीरं सक्थ्यूर्वोर्दक्षिणादितः ।
कुड्याकेशीं च सोपानं(रं) मायापूक्षीरिके तथा ।।

जानुजङ्घे गुल्फयुग्मे त्वाम्रातनृपसद्मनी ।
पादाधारे च वैरिञ्चीं कालाग्न्यवधिधारिकाम् ।।

(तन्त्रा० 29.59-63)

विवेककार जयरथ ने हाला का अर्थ अलिपुर, गोश्रुति का गोकर्ण, नृपसद्म का राजगृह और वैरिंची का अर्थ श्रीशैल किया है। तदनुसार यहाँ पीठों की नामावली इस प्रकार होगी—

1.	अट्टहास	13.	मरुदेश
2.	चरित्र	14.	नगर
3.	कौलगिरि	15.	पौण्ड्रवर्धन
4.	जयन्तिका	16.	एलापुर
5.	उज्जयिनी	17.	पुरस्तीर
6.	प्रयाग	18.	कुड्याकेशी
7.	वाराणसी	19.	सोपान(र)
8.	श्रीपीठ	20.	मायापुरी
9.	विरज	21.	क्षीरिका
10.	एडाभी	22.	आम्रातकेश्वर
11.	हाला (अलिपुर)	23.	नृपसद्म (राजगृह)
12.	गोश्रुति (गोकर्ण)	24.	वैरिंची (श्रीशैल)

यहाँ हम ऊपर दी गई तन्त्रालोक और कुब्जिकामत की 24 पीठों की नामावली की संक्षेप में समीक्षा करना चाहते हैं। कुब्जिकामत के उपोद्घात (पृ० 125-126) में पीठ

आदि की तालिका दी गई है। उसको यहाँ कुछ परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

	पीठ	देवी	क्षेत्रपाल	आयुध	वृक्ष[1]
1.	अट्टहास	सौम्यास्या	महाघण्ट	वज्र	कदम्ब
2.	चरित्रा(त्र)	कृष्णास्या	महाबल	शक्ति	करंज
3.	कोल(कौल)गिरि	महालक्ष्मी	अग्निक	दंड	नग
4.	जयन्ती(न्तिका)	ज्वालामुखी	महाप्रेत	खड्ग	निम्ब
5.	उज्जयिनी	महामाया	महाकाल	पाश	अश्वत्थ
6.	प्रयाग	वायुवेगा	पवन	ध्वज	उदुम्बर
7.	वाराणसी	शांकरी	शंकर	गदा	ताल
8.	श्रीकोट(पीठ) (देवीकोट्ट)	कर्णमोटी	हेतुक	शूल	वट
9.	विरजा(ज)	अम्बिका	अनल	मुद्रा, पट्टिश	
10.	ऐरुड़ी (एडाभी)	अग्निवक्त्रा	घंटारव	वज्र, शक्ति	
11.	हस्तिनापुर	पिंगाक्षी	महाजंघ	मुषल	
12.	एलापुर	खरास्या	गजकर्ण	पाश	
13.	गोकर्णा(र्ण)	काश्मरी	तडिज्जंघ	मुद्रा, लकुट	
14.	मरुदेश	क्रमणी	कराल	अंकुश	
15.	नगर	चैत्रकच्छनिवासा	रोमजंघ	हल	
16.	पु(पौ)ण्ड्रवर्धन	चामुण्डा	कुंभक	खट्वांग	
17.	पुरस्तीर	प्रसन्नास्या	त्रिजट	वज्र, शृंखल	
18.	पृष्ठापुर	विद्युन्मुखी	घनरव	दंड, शक्ति	
19.	कुहुडी (कुड्याकेशी)	महाबला	उल्कामुख	मुद्रा, लकुट	
20.	सोपार	अग्निवक्त्रा	पिशिताश	कट्टारिका	
21.	क्षीरिका	लोकमाता	महामेरु	खड्ग	
22.	मायापुरी	कंपिनी	भीमानन	वज्र	

1. यहाँ आठ पीठों के ही वृक्ष वर्णित हैं। सिद्धान्त शैवागम में इसी तरह आमर्दक आदि मठों के वृक्षों का उल्लेख मिलता है। ''तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन'' (पृ० 247) देखिये।

23. आम्रति(त)केश्वर	पूतना	महाक्रोध	गदा
24. राजगृह	भग्ननासा	महाकर्ण	वज्र, शक्ति

ग्रन्थ-सम्पादक ने तालिका 2 पर दी गई टिप्पणी के आधार पर पीठों के क्रम में कुछ परिवर्तन किया है। तन्त्रालोक के क्रम को देखते हुए उसे हमने स्वीकार नहीं किया। इसीलिये 14-16 संख्याओं की नामावली में परिवर्तन हो गया है। यहाँ दोनों सूचियों की तुलना करते हुए दोनों सूचियों में संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं। कोष्ठक के माध्यम से उनको दिखाया गया है। जैसे तन्त्रालोक की नामावली में 19वें पीठ का नाम सोपान दिया गया है, जबकि सही नाम सोपार होना चाहिये। कुब्जिकामत की सूची में भी इसी तरह के अनेक संशोधन किये गये हैं। 13वीं संख्या में देवी के और पीठ के नाम में विपर्यय हो गया है। इसी तरह से 15वें पीठ का नाम नगर और देवी का नाम चैत्रकच्छनिवासा किया गया है। 17वें पीठ का नाम पाठान्तर के आधार पर भी पुरस्तीर कर दिया है। ऐसा लगता है कि तन्त्रालोक का अन्तिम 24वाँ नाम श्रीशैल कुब्जिकामत में उपलब्ध नहीं है। अन्य कुछ नामों की भी सही पहचान नहीं हो पाई है।

तन्त्रालोक के 15वें आ० में नैशसंचार के तथा 29वें आ० में माधवकुल और देव्यायामल के आधार पर यह पीठों का विवरण दिया गया है। जयरथ (29.56) ने माधवकुल को तन्त्रराज भट्टारक नामक ग्रन्थ का एक भाग बताया है और कहा है कि देव्यायामल और माधवकुल की सहायता से कुछ आचार्यों ने अपना संप्रदाय चलाया था। यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि प्रस्तुत स्थल पर उद्धृत तन्त्रराज भट्टारक कादिमत के नाम से प्रसिद्ध सुभगानन्द नाथ की मनोरमा टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित तन्त्रराजतन्त्र से सर्वथा भिन्न ग्रन्थ है। कुब्जिकामत के समान तन्त्रालोक में उद्धृत इन सभी तन्त्रों का आविर्भाव अभिनवगुप्त से पहले हो चुका था और ऊपर उद्धृत बौद्ध तन्त्रों का भी। बौद्ध तन्त्रों में वर्णित डाक-डाकिनियों, वीरेश्वर-वीरेश्वरियों तथा नाडी-स्थानों की तुलना उक्त शैव-शाक्त तन्त्रों में वर्णित आन्तर-बाह्य स्थानों, भैरवों आदि से की जा सकती है। पीठों की नामावली का सही स्वरूप निर्धारित कर पाना और उनके बाह्य स्थानों की सही पहचान हो पाना भी एक कठिन कार्य है।

•

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—ठाकुरसेन नेगी—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धी:' के 31वें अंक में 72 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचना दी गई थी। प्रस्तुत अंक में 71 अवदान ग्रन्थों की सूचना दी जा रही है।

अवदान शब्द का मूल अर्थ समीचीन, शिक्षात्मक, वीरतापूर्ण कार्य अथवा सत्कर्म है। दूसरे शब्दों में अवदान का अर्थ पवित्र एवं उदात्त चरित्र भी है। जातकों की भाँति इसमें बुद्ध के पूर्व जन्म एवं इस जन्म से सम्बन्धित उदारचरित्रों का वर्णन है। अवदान साहित्य का जातक साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अन्तर केवल इतना है कि जातक कथाएं बुद्ध के विगत जीवन के विषय में है, जबकि अवदान कथाओं में प्रमुख पात्र स्वयं बुद्ध ही हैं। इसलिये इसको कभी-कभी बुद्धवचन की संज्ञा भी दी जाती है। बुद्ध ने जिस व्यक्ति के माध्यम से लोकोपकारक उपदेश दिये हैं, उसी के नाम से वह अवदान प्रसिद्ध है, किन्तु अवदान एवं जातक साहित्य में बुद्ध के उच्च अथवा तत्त्वज्ञानात्मक उपदेश नहीं पाये जाते हैं। समाधि एवं तत्त्वज्ञान के लिये भी कोई निर्देश नहीं है। संस्कृत बौद्धमत के द्वादश धर्मप्रवचनों में अवदान का छठा[1] स्थान (अंग) है। इसके अन्तर्गत एक अपरिमित साहित्य रहा होगा, जो मातृकाओं में सुरक्षित है।

अवदान-शतक की परिशिष्ट में प्रकाशित 'कल्पद्रुमावदानमाला' में आये प्रसङ्गों से यह सिद्ध होता है कि कुछ विद्वानों ने इस प्रकार के साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। फलस्वरूप वे अवदानार्थकोविद (श्लो० सं० 162) आवदानिक (श्लो० सं० 106) नाम से उसी प्रकार प्रसिद्ध थे, जैसे कि कुछ भिक्षु सुत्तन्तिक, अभिधम्मिक, सुत्तधर और विनयधर कहलाते थे।

अवदानों का सबसे प्राचीन संग्रह अवदानशतक है। दूसरी-तीसरी (223-253) शताब्दी में इसका चीनी अनुवाद हुआ था[2]। इसकी प्रत्येक कथा के अन्त में यह निष्कर्ष दिया है कि—शुक्ल कर्म का शुक्ल फल, कृष्ण कर्म का कृष्ण फल और व्यामिश्र का व्यामिश्र फल होता है। इनमें से अनेक अवदानों में अतीत जन्म की कथा दी है, जिसका फल प्रत्युत्पन्न काल में मिला। किसी-किसी अवदान में बोधिसत्त्व की कथा है।

---

1. सूत्रं ज्ञेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम् ।
इतिवृत्तकं निदानं च वैपुल्यं च सजातकम् ।
उपदेशाद्भुतौ धर्मौ द्वादशाङ्गमिदं वचः ।।
(हरिभद्र, आलोक, बड़ौदा, पृ० 35)

2. नाञ्जिओ नं० 1324, पृ० 295

इन्हें हम जातक भी कह सकते हैं, क्योंकि जातक में बोधिसत्त्व की कथा दी गई है, किन्तु कुछ ऐसे भी अवदान हैं, जिनमें अतीत की कथा नहीं पायी जाती। कुछ अवदान 'व्याकरण' के रूप में है अर्थात् इनमें प्रत्युत्पन्न की कथा वर्णित कर अनागत-फल का व्याकरण किया गया है।

अवदान-शतक के प्रारम्भिक अवतरण में बुद्ध का वर्णन है, कथाओं का अन्तिम वाक्य जिसमें भिक्षुओं ने बुद्धोपदेश की प्रशंसा की है, बुद्ध के स्मित तथा उसके परिणाम का वर्णन, बुद्ध का संसार की तरफ किसी पीड़ित की खोज करते हुए देखना, जिसको वे मुक्त कर सकें, अर्हत के गुण, सन्तान प्राप्ति के स्वाभाविक कारण, गर्भवती स्त्री के उपचार तथा शिशुपरिचारिकाओं का वर्णन, राजा तथा देश, कर्मविपाक सिद्धान्त का वर्णन, नवजात देवता का बुद्ध के पास रात्रिकालीन आगमन तथा भिक्षुओं की प्रार्थना पर बुद्ध द्वारा सुनाई गई विगत जीवन की कथाओं की प्रस्तावना। इनमें से बहुत से अवतरण दिव्यावदान में कभी विस्तृत रूप में तथा कभी यावत् शब्द से निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप में प्राप्त हैं। किन्तु अवदान-शतक में उक्त अवतरण हमेशा सम्पूर्ण तथा विस्तृत रूप में दिये हैं।

अवदान-शतक की सहायता से अनेक अवदान-मालाओं की रचना हुई। यथा—कल्पद्रुमावदानमाला, अशोकावदानमाला, द्वाविंशत्यवदानमाला ये सब अवदानशतक के ऋणी हैं। अवदानों के अन्य संग्रह भद्रकल्पावदान, अवदानरत्नमाला, अवदानसंग्रह, अवदानमाला और विचित्रकर्णिकावदान आदि हैं। इन अवदानों में दिव्यावदान, अवदानकल्पलता, अवदानशतक और महावस्तु-अवदान ग्रन्थ मुद्रित रूप में विद्यमान है, कुछ अन्य अवदान भी यत्र-तत्र प्रकाशित हुए हैं। लेकिन अभी भी सैकड़ों अवदान अप्रकाशित हैं।

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग के संस्थापक स्व० प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय का कहना था कि स्तोत्रों और चर्याओं की तरह जातकों और अवदानों का भी बौद्ध शोधकर्त्ताओं के लिये अत्यन्त महत्त्व है। इसलिये इससे सम्बन्धित सामग्री भी 'धीः' पत्रिका में आनी चाहिये। लेकिन अपने सीमित संसाधनों के कारण हमारे लिये सम्भव नहीं है कि हम अवदानों की कुल संख्या का आकलन और प्रकाशित-अप्रकाशित का निर्णय कर उसकी सूचना दे सकें, अभी हम देश-विदेश के पुस्तक संग्रहों में उपलब्ध लगभग 71 अवदानों की सूचना दे रहे हैं। साथ ही इनके कन्युर-तन्युर में स्थित भोटानुवाद की भी सूचना रोमन अक्षरों में दी जा रही है।]

ABBREVIATIONS

ASB	Sanskrit Manuscripts in the Government Collection, ed. by H.P. Shastri, Asiatic Society of Bengal, 1917.
ASHA	Asha Archives, Maitidevi, Kathmandu, Nepal.
BODLEIAN	Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Bodleian Library, Vol.II, 1905.
CABATON	Bibliotheque Nationale, Department des manuscripts Catalogue Sommaire Per A. Cabaton, Paris.
CAMBRIDGE	Catalogue of the Buddhist Manuscripts in the University Library, Cambridge, ed. by Cecil Bendall, Cambridge, 1883.
COMP./INCOMP.	Complete/Incomplete.
D-2	A Catalogue of Palm-Leaf and Selected Paper Manuscripts belonging to the Darbar Library, Nepal, ed. by H.P. Shastri, Calcutta, 1915.
DEV.	Devanāgarī.
IASWR	Buddhist Sanskrit Manuscripts, Micro-Fische Collection belonging to the Institute for Advance Studies of World Religions, New York.
IOL	Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Library of India Office, Vol. II.
JBORS	The Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna.
MCBMBLJ	A Microfilm Catalogue of the Buddhist Manuscripts in Nepal, ed. by H. Takaoka, Buddhist Library, Japan, 1981.
N	Newārī script.
NP/PL	Nepali Paper/Palm Leaf.
NEPAL-II	Catalogue of Darbar Library, Nepal, Vol.II.
PETROGRAD	Catalogue of Indian Manuscripts, Collection of E.P. Minaev and Some friends, compiler N.D. Mironoff, Published by the Russian Academy of Sciences, Petrograd, 1918.
RAK	Rāṣṭriya Abhilekhālaya, Kathmandu, Nepal.
RAS	Catalogue of Buddhist Sanskrit Manuscripts in the Possession of the Royal Asiatic Society, (Hodgson Collection) London.
SMTUL	A Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Tokyo University Library, Tokyo, Japan, 1965.

Title	Author	Institution	Ms. No.
अम्बरचक्रवर्तीसम्पदावदान Ambaracakravartīsampadāvadāna		RAK	3/658, Reel No. A.921/11
अवदानकथा Avadānakathā		"	4/1353, " " B.95/10
(बोधिसत्त्व) अवदानकल्पलता (Bodhisattva) Avadānakalpalatā No. 4155, (Ke. 1b[1]-366a[7]) Byaṅ-Chub-Sems-dPaḥi-rTogs-Pa-brJod Pa dPag-bSam-Gyi ḥKhri-Śiṅ	क्षेमेन्द्र Kṣemendra	" CABATON CAMBRIDGE	4/1365, " " B.95/5 8 913
अवदानमाला Avadānamālā		RAK " "	Reel No.A.118/3 3/642 3/596, Reel No.B.117/9
अवदानरत्नमाला (रत्नमालावदान)		"	Reel No.A.117/9
		SMTUL	25
Avadānaratnamālā (Ratnamālāvadāna)		"	26-I.II.III
(Garland of Precious Gems or a		"	27
Collection of edifying tales)		"	110
		"	124
		"	170
		"	316
		"	317
		"	365
		"	477-I
		"	491
		"	507

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	13		
"	"	63		
"	"	170		ed. by P.L. Vaidya,
Paper	"	101		The Mithila Institute,
"	N	152	"	Darbhanga, 1959.
NP	N	246		
"	Dev.	464	Comp.	
"	N	138	"	
"	"	138		ed.by Kanga Takahata, Oriental Library Series D, Vol. 3, Tokyo, 1954.
Paper	"	33		1-5 Ch.
"	"	24		Ch. 20, 26
"	"	284		Ch. 1-27, 34
"	"	13		Ch. 1
"	"	12		Ch. 3
"	"	351		Ch. 25
"	"	219		
"	"	222		
"	"	14		Ch. 17
"	"	35		Ch. 32
"	"	156		Ch. 4-6
"	"	11		Ch. 10

Title	Author	Institution	Ms. No.
अवदानशतक		RAK	Reel No.B.101/20
Avadānaśataka		"	" " A.918/3
		"	5/245, " " A.119/1
		"	3/299, " " A.918/3
		"	3/296, " " A.117/13
		IASWR	MBB-II-125
		CABATON	9-10
अवदानसंग्रह		RAK	3/296
Avadānasaṁgraha		ASHA	RN.195
अवदानसार-समुच्चय		CAMBRIDGE	Add.1599
Avadānasāra-Samuccaya			
अवलोकितेश्वरावदान		RAK	Reel No.E.1487/3
Avalokiteśvarāvadāna		IASWR	MBB-II-140
		ASHA	Bu-A.129
अवलोकितेश्वरावदान(कथा)		RAK	Reel No.E.1819/5
Avalokiteśvarāvadāna(Kathā)		"	" " E.811/6
		"	" " E.242/15
अवलोकितेश्वरावदानस्तव		"	" " E.1490/10
Avalokiteśvarāvadānastava			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	246		
"	"	248		ed. by P.L. Vaidya,
"	Dev.	239		The Mithila Institute,
"	"	189		Darbhanga, 1958.
"	N	344		
"	"	176		ed. by Dr. J. S. Speyer of
"	Dev.	151		Leiden University Holland, Published in the Bibliotheca Buddhica III, in 1906-9.
"	N	347		
"	"	48	Incomp.	
Paper	"	171		
NP	"	90		
"	"	90		
"	"	299		
"	"	12	Comp.	
"	Dev.	45	"	
"	"	100	Incomp.	
"	N	26	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
अशोकावदान		RAK	3/654, Reel No.A.117/11
Aśokāvadāna		"	3/599, " " A.559/3
		"	3/300, " " B.94/4
Nj No. 1344		"	" " B.97/17
Taisho No. 2042, 2043		"	" " E.665/3
		"	" " E.596/1
		"	" " E.462/12
		"	" " E.1848/7
		IASWR	MBB-II-92
		ASB	25/10755
		ASHA	DH.382
अशोकावदानमाला		RAK	5/599
Aśokāvadānamālā		"	Reel No.E.596/3
		CAMBRIDGE	1482
		SMTUL	34
		"	35
		"	36
		"	37
		"	55
		"	130
		"	131
		"	132
अश्वघोषावदान		RAK	4/2490, " " B.95/12
Aśvaghoṣāvadāna		"	Reel No.E.1848/5
		IASWR	WGS-3
		ASHA	DH.63
		"	RN.189
		"	" 187

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	59		
,,	,,	82		
,,	N	198	Comp.	
,,	,,	194	,,	
,,	,,	228	,,	
,,	,,	428	,,	
,,	,,	160	,,	
,,	,,	6		
,,	,,	35		
,,	,,	316	,,	
,,	,,	228	,,	
,,	Dev.	226		
,,	N	428		
Paper	,,	313		
,,	,,	67		Ch.3
,,	Dev.	239	Incomp.	
,,	N	31		Ch.22-25
,,	,,	322	Comp.	
,,	,,	16		Ch.10
,,	,,	29		Ch.8
,,	,,	28		Ch.8
,,	,,	36		Ch.8
NP	,,	19	,,	
,,	,,	10	,,	
,,	,,	11	,,	
,,	,,	57	,,	
,,	,,	40	,,	
,,	,,	26	Incomp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
अश्वघोषनन्दिमुखावदान		ASHA	RN.423
Aśvaghoṣanandimukhāvadāna		"	DH.10
"		"	RN.31
"		"	"28
"		"	Bu. 119
"		"	" 147
"		CAMBRIDGE	1486
"		"	1533
"		"	1857
"		MCBMBLJ	CH.520
"		"	DH.63
"		RAS	14
अष्टजन्मावदान		RAK	Reel No. E.1725/3
Aṣṭajanmāvadāna		ASHA	DH.59
अष्टमीव्रतमाहात्म्य-कुशावदान (वीरकुशावदान)		IASWR	MBB-1-150
Aṣṭamīvratamāhātmya-Kuśāvadāna		SMTUL	42
(Vīrakuśāvadāna)		CAMBRIDGE	1538
		"	1366
अष्टमीव्रतमाहात्म्य-व्रतावदान		RAK	Reel No.I.21/15
Aṣṭamīvratamāhātmya-Vratāvadāna			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	51	Comp.	
"	"	35	Incomp.	
"	"	19	Comp.	
"	"	8	"	
"	"	28	"	
"	"	66	"	
Paper	"	41		
"	"	18		
"	"	36		
NP	"	19		
"	"	57		
Paper	"	52		
NP	"	118	Incomp.	
"	"	118		
"	"	35		
Paper	"	51		
"	"	40		
"	"	133		
NP	Dev.	43	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
अहोरात्रव्रतचैत्यसेवानुशंसावदान Ahorātravratacaityasevānu- śaṁsāvadāna		MCBMBLJ	KA.15-1
अहोरात्रव्रतचैत्यसेवासंसारावदान Ahorātravratacaityasevā- saṁsārāvadāna		RAK	Reel No. E.699/19
अहोरात्रव्रतमाहात्म्य-मणिचूडावदान Ahorātravratamāhātmyā-Maṇicūḍāvadāna		MCBMBLJ "	CH.94 CH.480
अजातशत्रुदमनावदान Ajātaśatrudamanāvadāna		RAK " MCBMBLJ	Reel No. A.919/16 " " E.1291/10 A.53-B
उपगुप्तावदान Upaguptāvadāna		SMTUL IASWR	171 MBB-II-91
उपगुप्ताशोकावदान Upaguptāśokāvadāna		"	MBB-II-90

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	24		
"	"	43		
"	"	80		Missing f. 42
"	"	47		
"	Dev.	23		
"	N	36	Comp.	
"	"	(37b-72a)		
Paper	"	($390a^7$-$405a^2$)		
NP	"			
"	"	8		

Title	Author	Institution	Ms. No.
उपोषधावदान		RAK	Reel No.E.652/5
Upoṣadhāvadāna		"	" " E.699/17
"		"	" " E.1367/6
"		CAMBRIDGE	1603
"		"	1610
"		"	1615-IV
"		SMTUL	201-38
उपोषधावदान एवं दोषनिर्णयावदान		RAS	15
Upoṣadhāvadāna & Doṣanirṇayāvadāna			
कठिनावदान		CAMBRIDGE	1418
Kaṭhināvadāna		CABATON	20
		RAK	5/70, Reel No. A.119/17
		"	5/69, " " A.119/16
		"	" " E.699/15
		"	" " E.1238/30
कठिनावदानटीका		"	5/71, " " A.119/13
Kaṭhināvadānaṭīkā			
कनकवर्णावदान		IASWR	MBB-II-31
Kanakavarṇāvadāna			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	19	Comp.	
”	”	26		
”	”	18		
Paper	”	18		
”	”	14		
”	”	13		
”	”	(137b[1]-142a[6])		
”	”	22		
”	”	11		
”	Dev.	34		
NP	N	7		
”	”	11		
”	”	10	”	
”	”	19	”	
”	”	18	Incomp.	
”	”	9		

Title	Author	Institution	Ms. No.
कपिलपात्रावदान		SMTUL	73
Kapilapātrāvadāna		"	74
कपिशावदान		"	75
Kapiśāvadāna		"	76
"		"	77
"		CABATON	21
"		CAMBRIDGE	1345
"		"	1537
"		IASWR	MBB-I-55
"		RAK	1/1367, Reel No.B.96/6
"		"	3/594, " " A.119/9
"		"	4/2192
"		"	4/2524, Reel No.A.119/8
"		"	" " A.118/7
"		"	" " E.1292/10
"		"	" " E.1267/18
"		"	" " E.1483/1
"		"	" " E.1848/8
कल्पद्रुमावदान		SMTUL	79
Kalpadrumāvadāna		"	366
		"	367
		"	368
		CABATON	26-27
		"	27
कल्पद्रुमावदानमाला		CAMBRIDGE	1590
Kalpadrumāvadānamālā			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper	N	48		
"	"	31		Damage
"	"	146		Ch.18
"	"	24		Ch.9
"	"	46		Ch.9
"	Dev.	74		
"	N	17		
"	"	48		
NP	"	49		
"	"	60		
"	Dev.	22		
"	N	134		
"	"	29		
"	"	37		
"	"	7		
"	"	20		
"	"	66	Comp.	
"	"	11		
Paper	Dev.	63		
"	"	23		Ch.29
"	N	15		Ch.29
"	Dev.	14		
"	"	144		
"	N	(145-292)		
"	"	257		

Title	Author	Institution	Ms. No.
कविकुमारावदान		RAK	5/18, Reel No.A.119/11
Kavikumārāvadāna		IASWR	MBB-III-9
		ASHA	RN. 8
		"	" 188
		"	" 198
		"	" 828
		"	Bu-A.123
		"	Bu-A.124
		"	124
कवितावदान		RAK	5/15, Reel No.A.918/14
Kavitāvadāna		"	5/671, " " B.94/4
		"	1/1633, " " A.1370/5
		"	" " E.1293/2
		"	" " E.1259/3
कार्तिकावदान		"	3/590, " " A.119/4
Kārtikāvadāna		"	4/2381, " " A.119/12
		"	" " E.1487/5
		"	" " E.1499/15
		IASWR	MBB-II-83
कार्तिकव्रतावदान		CABATON	14-II
Kārtikavratāvadāna			
काशीसुन्दर्यवदान		RAK	1/1697 (Kha 2)
Kāśīsundaryavadāna			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	12	Incomp.	
,,	,,	12		
,,	,,	36	Comp.	
,,	,,	33	Incomp.	
,,	,,	21	,,	
,,	,,	36	,,	
,,	,,	40	,,	
,,	,,	40	,,	
,,	,,	69	Comp.	
,,	,,	11	Incomp.	
,,	Dev.	116	Comp.	
,,	,,	5	,,	
,,	,,	130	,,	
,,	N	168	,,	
,,	Dev.	21	,,	
,,	N	18	,,	
,,	,,	9	Incomp.	
,,	,,	28	,,	
,,	,,	27		
Paper	Dev.	54		
PL	Bhujimol	4	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
कुणालावदान		RAK	3/653, Reel No.A.119/5
Kuṇālāvadāna		"	5/242, " " A.113/6
No.4145 (Su.227b^{3}-240a^{4})		"	" " A.919/17
Ku-Ṇā-Laḥi rTogs-Pa-brJod-Pa			
Taisho No.2043, Nj. No.1343			
कुशावदान		"	3/243, " " A.119/10
Kuśāvadāna		"	3/243, " " B.96/16
		"	4/1034
		"	" " E.1169/1
		"	" " E.1267/17
		ASHA	RN.1
		"	" 2.666
कुसुमकरावदान		"	Reel No. E.651/8
Kusumakarāvadāna			
कोटिकर्णकथा (उपोषधावदान)		"	" " E.1291/9
Koṭikarṇakathā (Upoṣadhāvadāna)			
कौशिकाद्यवीर्योत्साहनावदान		IASWR	MBB-II-17
Kauśikādyavīryotsāhanāvadāna		CAMBRIDGE	1381
गोपालकलुब्धदमनावदान		IASWR	MBB-II-41
Gopālakalubdhadamanāvadāna			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	22	Comp.	
”	”	30	”	
”	N	44	”	
”	Dev.	23	”	
”	”	4	Incomp.	
”	N	78	”	
”	”	38	Comp.	
”	”	70	”	
”	”	70	”	
”	”	68	”	
”	”	7	”	
”	”	19	”	
”	”	14	”	
Paper	”	11	”	
NP	”	11		

Title	Author	Institution	Ms. No.
चन्द्रावदान Candrāvadāna		RAK	4/1829, Reel No. B.96/14
चित्रविंशत्यवदान Citraviṁśatyavadāna		"	" " E.734/6
		"	" " A.918/5
		SMTUL	322
		"	323
		"	324
		"	390
		"	477-II
चैत्यविंशत्यवदान Caityaviṁśatyavadāna		RAK	Reel No. E.379/10
चैत्यव्रतानुशंसावदान Caityavratānuśaṁsāvadāna		"	" " A.121/5
		"	" " E.1477/1
		"	" " E.1838/4
		"	" " E.1139/4
		IASWR	MBB-II-95
		ASHA	DH.274
जातकावदानमाला Jātakāvadānamālā		RAK	3/241
		"	3/359
		"	3/259, Reel No. B.96/11
		"	3/295, " " B.96/8

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	17		
”	”	35	Incomp.	
”	”	1	”	
Paper	”	16		
”	”	20		
”	”	15		
”	”	26		
”	”	35		
NP	Dev.	12	”	
”	N	43	”	
”	”	122	”	
”	”	49	Comp.	
”	”	52		
”	”	21		
”	”	48		
”	Dev.	161	”	
PL	N	65	Incomp.	
NP	Dev.	39	”	
”	N	73	”	

Title	Author	Institution	Ms. No.
ज्योतिषावदान Jyotiṣāvadāna		RAK	3/592, Reel No. B.96/12
तीर्थानुस्मृत्यवदान Tīrthānusmṛtyavadāna		"	3/366
		"	3/755, Reel No. A.122/11
त्रिपिटकावदान Tripiṭakāvadāna		IASWR	MBB-II-35
त्रिरत्नभजनानुशंसावदान Triratnabhajanānuśaṁsāvadāna		"	MBB-II-94
दशशिरावदान Daśaśirāvadāna		"	MBB-II-29
दिव्यावदान Divyāvadāna		CABATON	53
		"	54
		"	56
		"	57
		CAMBRIDGE	865
		"	1680-III

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	22	Comp.	
”	”	4	”	
”	”	5	”	
”	N	13		
”	”	5		
”	”	17		
Paper	Dev.	299	”	
”	”	296	”	
”	N	216	”	
”	”	242	”	
”	”	258	”	
”	”	21		Fragment

Title	Author	Institution	Ms. No.
दिव्यावदान Divyāvadāna		RAK	4/11, Reel No. A.874/3
		"	" " E.595/8
		ASHA	RN.36
दिव्यावदानमाला Divyāvadānamālā		ASB	22/9882
		RAK	3/601, Reel No. A.120/5, A.121/1
		"	3/689, " " A.38/15
		"	3/359, " " A.38/14
		"	5/105, " " B.97/4
		"	5/66, " " B.19/5
		"	4/11
		"	3/295
		"	4/737, " " B.24/49
		"	3/737, " " B.24/49
		"	" " E.1257/5
		"	" " E.1257/7
दिव्यावदान(विश्वान्तरकथा) Divyāvadāna (Viśvāntarakathā)		"	" " E.652/3
दिव्यभोजनावदान Divyabhojanāvadāna		ASB	81/4758

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	352	Comp.	ed. by P.L. Vaidya,
”	”	408		The Mithila Institute,
”	”	28		Darbhanga, 1959.
”	”	304	”	
”	”	112	Incomp.	
PL	”	65	”	
NP	”	290	”	
”	Dev.	498	Comp.	
”	N	311		
”	”	249	Incomp.	
PL	Bhujimol	7	”	
”	N	8	”	
NP	”	87	”	
”	”	83	”	
”	”	36		
PL	”	8		

Title	Author	Institution	Ms. No.
दीपङ्करतथागत-पिण्डपात्रावदानकथा Dīpaṅkaratathāgata-Piṇḍapātrāvadānakathā		SMTUL	172
दीपङ्करावदान Dīpaṅkarāvadāna		CABATON	58
		"	60
द्वाविंशतिकावदान Dvāviṁśatikāvadāna		SMTUL	29-IV-XXV
		"	170
		"	180
		"	181
		"	182
		"	183-I
		"	320-II
		RAS	27
		CAMBRIDGE	1274
		"	1327
		RAK	3/291, Reel No.B.96/17
		"	3/241, " " A.121/2
		"	" " E.318/4
		"	" " E.1480/5
		"	4/2460, " " A.120/4
		MCBMBLJ	A.54
		IASWR	MBB-I-98

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper	Dev.	8		A Version of the Piṇḍapātrāvadāna.
"	"	101		
"	"	192		
"	"	104		
"	"	12		Ch. 12
"	N	123	Comp.	
"	"	152		
"	"	116		
"	"	110		
"	"	13a4-21a		
"	"	108		
"	"	46		
"	"	78		
NP	Dev.	77	"	
"	"	40	"	
"	N	123	"	
"	"	88	"	
"	"	104	"	
"	"	132	Incomp.	Missing f. 49
"	"	133		

Title	Author	Institution	Ms. No.
धर्मपालावदान Dharmapālāvadāna		RAK	1/1697 Ka[2], Reel No.A.936/2
		”	1/1433
		”	Reel No. E.1731/26
		”	4/2160, ” ” B.97/11
धर्मरत्नावदान Dharmaratnāvadāna		ASHA	Bu.A.125
धीमतीपरिपृच्छावदान Dhīmatīparipṛcchāvadāna		RAK	5/11, Reel No.A.918/6
			3/290
नन्दावदान Nandāvadāna		IASWR	MBB-II-40
नागावदान Nāgāvadāna		”	MBB-II-38

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
PL	N	1	Incomp.	
"	"	3		
NP	"	25		
"	"	59	Comp.	
"	"	12	"	
"	"	6	"	
"	"	9	"	
"	"	13	"	
"	"	6		

Title	Author	Institution	Ms. No.
पण्डितावदान		IASWR	MBB-II-37
Paṇḍitāvadāna			
पद्मावदान		"	MBB-III-6
Padmāvadāna		RAK	Reel No. E.1343/2
पानीयावदान		ASB	26/4773
Pānīyāvadāna			
पांशुप्रदानावदान		RAK	5/244, Reel No. A.918/28
Pāṅśupradānāvadāna			
पिण्डपात्रावदान		"	3/295
Piṇḍapātrāvadāna		"	3/290
"		"	Reel No. E.699/18
"		"	5/7854, " " 919/9
"		"	5/7957, " " 919/10
" (संक्षिप्त) Saṁkṣipta		"	3/592, " " 919/11
" (गाथा) Gāthā		"	3/364
"		ASB	4786/27
"		CABATON	74
"		CAMBRIDGE	1305
"		"	1335
"		IASWR	MBB-II-2
"		SMTUL	102-II
"		"	241
"		RAS	45
"		ASHA	DH.62

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	13		
"	"	6		
"	"	6		
PL	"	3		
NP	"	28		
"	"	21	Comp.	
"	"	21	"	
"	"	29	"	
"	"	17	Incomp.	
"	"	7	"	
"	"	6	Comp.	
"	"	Folding Book	"	
"	"			
Paper	Dev.	14		
"	N	34		
"	"	6		
NP	"	16		
Paper	"	24		
"	"	25		
"	"	9		
NP	"	9		

ञिङ्मा परम्परानुसार निधिधर्म का प्रादुर्भाव

—ठाकुरसेन नेगी—

[धी: के 31वें अंक में ''ञिङ्मा परम्परानुसार अनुयोग एवं अतियोग का सामान्य परिचय'' दिया गया था। प्रस्तुत अंक में ''ञिङ्मा परम्परानुसार निधिधर्म के प्रादुर्भाव'' का सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

निधिधर्म—संक्षेप में इस प्रकार के धर्म ग्रन्थों को कुछ समय के लिये जनसाधारण के इन्द्रिय प्रत्यक्ष में न आने देकर अदृश्य एवं परोक्षरूप में रखना। अर्थात् लिपिबद्ध किये गये ये निधिग्रन्थ कुछ समय के लिये देशना के योग्य पात्र के अभाव में डाकिनियों के संरक्षण में अदृश्य रूप से छिपाकर रखे जाते थे। जब इनके आविर्भाव का समय आता है, तब सिद्ध पुरुषों को अपने अधिदेवों द्वारा व्याकृत किया जाता है तथा डाकिनियों द्वारा उक्त सिद्धों को अभिषिक्त कर उन निधियों से इन धर्म ग्रन्थों को निकालने की अनुमति प्रदान की जाती है।]

निधिधर्म[1]

बोधिसत्त्व वज्रगर्भ (བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྡོ་རྗེ་སྙིང་པོ་) ने सामान्य एवं गुह्यसाधना से सम्बद्ध ग्रन्थों को कुछ समय के लिये मनुष्य लोक में प्रचार करने के योग्य पात्र एवं क्षेत्र न देखकर डाकिनीकर्म इन्द्राणी को सौंप दिया। इन्होंने अष्ट साधनोपदेश के पाँच सामान्य तन्त्रों तथा दस विशेष तन्त्रों को भिन्न-भिन्न पेटिकाओं में रखकर शीतवन

---

1. निधिधर्म (གཏེར་ཆོས་)-बोधिसत्त्वों, आचार्यों एवं विशेषकर आचार्य पद्मसंभव द्वारा भूगर्भ, पर्वत शृंखलाओं, सरोवरों एवं वृक्षों के भीतर में छिपाये गये धर्म ग्रन्थों को निधिधर्म कहते हैं।

(भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, तारनाथ, पृ० 59)

आचार्य अर्हत् - राजा कर्मचन्द्र के समय में एक त्रिपिटकधर संन्यासी थे। उन्होंने एक बार महानिधिकलश की साधना की। सिद्धि पाकर वाराणसी में भूगर्भ से लगभग एक योजन ऊँचा रत्नघट निकाला और कई लाख भिक्षु संघ के जीवन निर्वाह का प्रबन्ध किया। एक बार उसकी रक्षा करना भूल जाने के कारण उस रात्रि यक्षगण रत्नों को चुराकर ले गये। प्रात: संघ-पूजा के लिये कलश को खोला गया तो कलश खाली मिला। उस विद्यामन्त्रज्ञ, महाऋद्धि प्राप्त भिक्षु ने ब्रह्मा आदि सभी बड़े-बड़े देवों को बुलाकर उन्हें पीड़ित किया, तो देवों ने यक्षों को बुलाकर फिर से निधिकुम्भ भरवा दिया गया। इस रीति से लगभग 40 वर्ष तक संघ का सत्कार किया गया। यह निधिकुम्भ उन्हीं आचार्य अर्हत् को दिखाई देता था, पर औरों को भूमि खुदाई करने पर दृष्टिगत होता था।

(भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 60)

श्मशान (དུར་ཁྲོད་བསིལ་བའི་ཚལ་) के चैत्यशङ्करकूट वन (མཆོད་རྟེན་བདེ་བྱེད་བརྩེགས་པའི་ཚལ་) में (मुहरबन्द कर) अदृश्य रूप में रखा।

कालान्तर में आठ सिद्धाचार्यों ने अपनी-अपनी अभिज्ञा (ज्ञान) से यह रहस्य जाना, तब उस स्थान पर इकट्ठे होकर, आध्यात्मिक शक्ति द्वारा लौकिक-डाकिनियों (འཇིག་རྟེན་པའི་མཁའ་འགྲོ་མ་) एवं दर्पों (དྲེགས་པའི་ཚོགས) के समुदाय को सत्यवचन (བདེན་པའི་ཚིག་) और अनुकूल (अनुरूप) द्रव्य से मुक्त किया[1]।

परोपकार के अभिप्राय (उद्देश्य) से डाकिनीकर्म इन्द्राणी समाधिबल से साक्षात (མངོན་སུམ་) प्रकट हुई तथा उन पेटिकाओं (पिटकों) को ग्रहण कर महोत्कृष्ट (महाविशिष्ट) सुवर्ण पेटिका आचार्य विमल को, सम्यक् हेरुक की रजत पेटिका आचार्य हूंकार को, यमान्तक (གཤིན་རྗེའི་) की अयस् पेटिका-मञ्जुश्रीमित्र (འཇམ་དཔལ་བཤེས་གཉེན་) को, हयग्रीव (རྟ་མགྲིན་) की ताम्र (ཟངས་) पेटिका-आचार्य नागार्जुन को, (वज्र) कील (ཕུར་པུའི་) की फिरोजी (གཡུ་) पेटिका-आचार्य पद्मसंभव को, मातृका (མ་མོའི་) की सुवर्ण (གསེར་) पेटिका-धनसंस्कृत को, पूजा-स्तुति (མཆོད་བསྟོད་) की गोमेद पेटिका-आचार्य गुह्य को और उग्रमन्त्र की गोमेदक-पेटिका (གཟི་སྒྲོམ་)-आचार्य शान्तिगर्भ को सौंप दी। बाद में प्रत्येक आचार्य ने अपने-अपने विषय में पाण्डित्य (दक्षता) प्राप्त कर मन्त्रसिद्धि उपलब्ध की।

निधिधर्म के ग्रन्थों के विषय में कहा जाता है—प्राचीन काल में भारत में सिद्ध सरहपाद, आचार्य नागार्जुन[2], आचार्य सरोरुहवज्र, सिद्ध विरुपाद एवं आचार्य लीलावज्र आदि द्वारा आवाहन कर लाये गये भाषित (आख्यात) तन्त्र ग्रन्थ भी निधि से निकाले गये तन्त्र ग्रन्थ हैं।

भारत के प्रसिद्ध इतिवृत्त (घटना) के अनुसार योगेश्वर विरुपाद के द्वारा यमान्तक की भावना करने पर वज्रवाराही की अनुकम्पा से उन्हें सिद्धि मिली। वैसे वे यमान्तक के सदृश महान् योगेश्वर बन जाने से समस्त तन्त्रों की देशना कर सकते थे, लेकिन सिद्ध पुरुषों

---

1. རྙིང་མའི་ཆོས་འབྱུང་, पृ० 93

2. जम्बूद्वीप से विलुप्त हो चुके भगवान् बुद्ध के वचनों के अनेक धारणी एवं शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र, जो उस समय नागलोक में विद्यमान थे, उन्हें प्राप्त करने के लिये आचार्य नागार्जुन ने नागलोक की यात्रा की। (भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 42)

की यह विशेषता है कि वे अपने साक्षात् विनेयों के अधिकार के अनुसार देशना करते हैं। अत: उन्होंने रक्तयमारितन्त्र लेकर स्वयं भगवान् से उपदेश लेते हुए साधना की और उपदेशों को लिपिबद्ध किया। उनके शिष्य डोम्बी हेरुक ने कुरुकुल्लाकल्प और अरल्लितन्त्र का आवाहन किया। इन्होंने ज्ञान डाकिनियों से वार्तालाप कर हेवज्रतन्त्र ग्रहण कर, नैरात्म्य साधन, सहजसिद्धि आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। तब आचार्य कम्बलपाद और आचार्य सरोरुहवज्र हेवज्रतन्त्र लाये और कम्बलपाद ने स्वसंवेदप्रकृत नामक शास्त्र का प्रणयन किया, जो प्रधानतया निष्पन्नक्रम का प्रतिपादन करता है। आचार्य सरोरुहवज्र ने उत्पन्नक्रम-साधन आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। इस तरह हेवज्रसाधन का सर्वप्रथम प्रचार हुआ, और वह सरोज साधन के नाम से प्रसिद्ध हुआ[1]।

संक्षेप में जम्बूद्वीप में सिद्ध सरहपाद के द्वारा बुद्धकपाल, सिद्ध लूईपाद द्वारा योगिनी संचर्या, सिद्ध कम्बलपाद एवं सिद्ध सरोरुहपाद द्वारा हेवज्र, सिद्ध कृष्णपाद द्वारा सम्पुटतिलक, आचार्य ललितवज्र द्वारा कृष्णयमारि, आचार्य गम्भीरवज्र द्वारा वज्रामृत, सिद्ध कुक्कुरिपाद द्वारा महामाया और पिटोपाद द्वारा कालचक्र लाया गया।

निधि का अर्थ है—'नितरां दधाति पोषयतीति निधि:' अर्थात् सब प्रकार से पुष्टिकारक वस्तु, मन्त्रविद्या से बढ़कर सब प्रकार से पोषण करने वाली बहुमूल्य वस्तु क्या हो सकती है। अत: उसे गोपनीय (सुरक्षित) रखना चाहिये। इसलिये ये ग्रन्थ कुछ समय के लिये जन-साधारण के इन्द्रिय प्रत्यक्ष (དབང་པོའི་མངོན་སུམ་) में न आने देकर अदृश्य (མི་སྣང་བ་) एवं परोक्ष (ལྐོག་གྱུར་) रूप में रखने के लिये लिपिबद्ध किये गये ये (तन्त्र) ग्रन्थ कुछ समय के लिये देशना के योग्य पात्र के अभाव में डाकिनियों के संरक्षण में अदृश्य रूप से छिपाकर रखे जाते हैं। जब इनके आविर्भाव का समय आता है तब सिद्ध पुरुषों को अपने अधिदेवों द्वारा व्याकृत किया जाता है तथा उड्यान प्रदेश के धर्मगञ्जी (དྷརྨ་གཉྫི) आदि में गुह्यमन्त्र के महाप्रासादों (भवनों) में डाकिनियों द्वारा उक्त सिद्धों को अनुज्ञात एवं अभिषिक्त कर इन ग्रन्थों को निकालने की अनुमति प्रदान की जाती है। इन तन्त्र ग्रन्थों का पहले सिद्ध पुरुष (पुद्गल) स्वयं अभ्यास कर अपने-अपने अनुभव में लाते हैं और बाद में फिर अपने (गिने-चुने) योग्यपात्रों (शिष्यों) को अल्प (किञ्चित) मात्रा में इनका उपदेश देते हैं।

1. द्र०-भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 103

इस तरह भोट (तिब्बत) में भी वहाँ के सभी आचार्यों के (दर्शन मात्र) द्वारा अनागत (भावी) विनेयजनों के विचारों को यथावत् जानकर गम्भीर एवं विस्तीर्ण गुह्य तन्त्र पिटकों में से साधन, कर्मविधि, अववाद (उपदेश) आदि भाषित तन्त्रों को पीत-पत्रों में लिखकर उन्हें पर्वत की गुफाओं, शिलाओं, सरोवरों के प्रपात आदि में अमनुष्य निधि-पालों के संरक्षण में छिपाकर रखा गया। साथ-साथ यह प्रणिधान भी किया गया कि "भविष्य (अनागत) में उन सौभाग्यशाली सिद्ध पुरुषों द्वारा ही इन धर्म ग्रन्थों को निकाला जाय, जो इनके अधिकारी हों।

कालान्तर में उन सौभाग्यशाली अधिकारी (सिद्ध) पुरुषों (पुद्गलों) को अपने पूर्व प्रणिधान के बल (सामर्थ्य) से प्रेरणा मिलती है। शुभ मुहूर्त और पूर्व व्याकरण (ལུང་བསྟན་) के अनुसार महान् आचार्यों द्वारा साक्षात् दर्शन देकर अभिषिक्त किया जाता है तथा व्याकरण का भार समर्पित किया जाता है। तब वे अपनी (आध्यात्मिक) शक्ति द्वारा अमनुष्य (डाकिनियों) निधिपतियों को समय और व्रत के वशीभूत (अभिभूत) कर उन (निधियों) से धर्मग्रन्थ और धन आदि अनेक प्रकार की जनकल्याणकारी वस्तुएं निकालते हैं। इस प्रकार वे बुद्ध (शासन) के कार्यों तथा प्राणियों का विपुल हित सम्पादन करते हैं, जो बुद्ध के महान् कार्यों का एक अंग है।

आर्यसर्वपुण्यसमुच्चय समाधिसूत्र[1] (འཕགས་པ་བསོད་ནམས་ཐམས་ཅད་སྡུད་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་མདོ་) में भी कहा है—"हे निर्मल तेज! धर्म के इच्छुक महाबोधि-सत्त्वों के लिये अनेक प्रकार की निधियाँ—पर्वतों, पर्वत की शृंखलाओं (རིའི་སུལ) और वृक्षों के भीतर में छिपाकर रखी गयी है। (बोधिसत्त्वों को) इन निधियों के धर्मद्वार से अनन्त धारणी तथा धर्मग्रन्थ प्राप्त होंगे।" "हे निर्मल तेज! धर्म के इच्छुक बोधिसत्त्व-महासत्त्वों को वे देवता प्रतिभान करेंगे, जिन्होंने पूर्व में भगवान् बुद्ध के दर्शन प्राप्त किये थे।" "हे निर्मल तेज! धर्म के इच्छुक बोधिसत्त्व-महासत्त्वों के आयुक्षय होने पर भी भगवान् बुद्ध तथा देवताओं द्वारा उनकी आयु एवं बल की वृद्धि करते हैं। बुद्ध एवं देवताओं के अधिष्ठान से वे चाहें तो अपनी इच्छा से सहस्र वर्ष तक जीवित रह सकते हैं।

आर्यधर्मसङ्गीतिसूत्र[2] (ཆོས་ཡང་དག་དག་པར་སྡུད་པའི་མདོ་) में कहा है—"हे आनन्द! जो कोई भी (व्यक्ति) सद्धर्म की प्रतिष्ठा के लिये धर्मपर्याय सूत्रान्त (ཆོས་ཀྱི་

1. आर्यसर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिसूत्र, तो० 134
2. आर्यधर्मसङ्गीतिनाममहायानसूत्र, तो० 238

ཏམ་གྲུངས་) को ग्रन्थ रूप में लिखकर निधि में छिपाकर इसकी पूजा करता है, वह दस तत्त्वों को प्राप्त करता है। "हे आनन्द वे दस तत्त्व ये हैं—1. बुद्ध के दिव्यचक्षु प्राप्त करने से बुद्ध के दर्शन करने की निधि। 2. दिव्यश्रोत्र प्राप्त करने से बुद्ध से धर्मश्रवण करने की निधि। 3. अनागामी संघ का दर्शन करने की निधि। 4. (बहुमूल्य) रत्नमय हस्त प्राप्त करने से अक्षयज्ञान सम्पत्ति भोग करने की निधि। 5. लक्षणानुव्यञ्जन परिपूर्ण (सम्पन्न) होने से बुद्ध बिम्ब (रूप) प्राप्त करने की निधि। 6. दास-दासी (सेवक-सेविका) - अभेद होने से दास-दासी की निधि। 7. प्रतिभा लाभिन् होने से प्रतिभा की परम (श्रेष्ठ) निधि। 8. परवाद (परवादिन् = ཕས་ཀྱི་རྒོལ་བ་) का दमन (निग्रह) होने से निर्भीकता की निधि। 9. सत्त्वों (प्राणियों) को उपजीविका (ཉེ་བར་འཚོ་བ་) का आश्रय देने से पुण्य एवं सुखी जीवन प्राप्त करने की निधि इत्यादि"। इस प्रकार उपर्युक्त निधिधर्म की धर्मग्रन्थों की प्रामाणिकता को भगवान् सुगत द्वारा निर्विवाद रूप से कहा है। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने सभी तन्त्रों एवं सूत्रों में निधि के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की है। यह निधि से पवित्र ग्रन्थ आदि निकालना हमारे विद्याधर गुरुओं (आचार्यों) की धार्मिक परम्परा रही है।

अति गम्भीर निधिधर्म

आर्यसागरनागराजपरिपृच्छासूत्र[1] (འཕགས་པ་ཀླུའི་རྒྱལ་པོ་རྒྱ་མཚོས་ཞུས་པའི་མདོ་) में कहा है—"त्रिरत्न के वंशवृक्ष को अविच्छिन्न रखने वाले—

1. अक्षयमहानिधि (མི་ཟད་པའི་གཏེར་ཆེན་པོ་)।

2. धर्माधिगममहाप्रमाणाक्षयमहानिधि (ཆོས་རྟོགས་པ་ཆེན་པོ་ཚད་མེད་པའི་གཏེར་ཆེན་པོ་)।

3. सत्त्वाराधनाक्षय(महा)निधि (སེམས་ཅན་མགུ་པར་བྱ་བའི་གཏེར་ཆེན་པོ་)।

4. आकाशसमाक्षयमहानिधि (ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་པའི་གཏེར་ཆེན་པོ་) —ये चारों अक्षयमहानिधि हैं।"

इसी प्रकार आर्यसर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिसूत्र[2] (འཕགས་པ་བསོད་ནམས་ཐམས་ཅད་བསྡུས་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་མདོ་) में भी कहा है—"हे निर्मल तेज! धर्म की

1. आर्यसागरनागराजपरिपृच्छानाममहायानसूत्र, तो० 153, 154
2. आर्यसर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिनाममहायानसूत्र, तो० 134

अभिकांक्षा वाले (इच्छुक) बोधिसत्त्व महासत्त्वों ने सद्धर्म (रूपी) निधियों को पर्वतों, निकुंजों (རི་སུལ་) एवं वृक्षों के भीतर छिपाकर रखा है। वहाँ से अनन्त धारणी एवं धर्मग्रन्थ (ཆོས་ཀྱི་གླེགས་བམ་) हस्तगत होंगे''। इस उदाहरण से भी निधि सम्बन्धी धर्मग्रन्थों, निधि के क्षेत्रों तथा निधि के आविष्कारकों का ज्ञान हो जाता है। पुनः इसी में कहा गया है—''विशुद्ध चित्त सम्पन्न वाले को बुद्ध के नहीं रहने पर भी आकाश के मध्य से, प्राचीरों (ཙིགས་པ་) तथा वृक्षों (के मध्य) से धर्मग्रन्थ उपलब्ध होंगे''। इस कथन से आकाशनिधि आदि धर्मग्रन्थों की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त भी प्रसिद्ध सूत्रों और तन्त्रग्रन्थों में निधि का स्वरूप, निरुक्ति (ངེས་པའི་ཚིག་), पर्याय, प्रयोजन आदि का उल्लेख देखने को मिलता है। यह तथ्य भारत एवं भोट (तिब्बत) दोनों में समान रूप से विख्यात है।

निधि सम्बन्धी ये धर्मग्रन्थ केवल किसी एक आचार्य की रचना नहीं हैं। इन ग्रन्थों को निधि में छिपाए जाने का प्रयोजन बताते हुए—नदीक्रीडासूत्र (ཆུ་ཀླུང་རོལ་པའི་མདོ་) में वर्णित है—''मेरे शासन से सम्बन्धित धर्मग्रन्थों को हृदय से प्राप्त कर हृदय रूपी निधि (ཐུགས་ནས་ཐུགས་ཀྱི་གཏེར་དུ་སྦོས་) में छिपाकर रखो या भूगर्भ (སའི་སྙིང་པོ་) में छिपा दो, क्योंकि तीर्थिक (མུ་སྟེགས་པ་) निश्चय ही इन (निधिग्रन्थों) के (यथार्थ) अर्थों का अनर्थ कर देंगे।

धर्मराजरत्नकुश(द्वीप) (ཆོས་རྒྱལ་རཏྣ་གླིང་པ་) की निधि से सम्बद्ध भविष्यवाणी में कहा है—''अतिगम्भीर, परम-पवित्र (धर्मग्रन्थों को) भोट (तिब्बत) वासियों के कल्याणार्थ, विशेषतया कलियुग (སྙིགས་མའི་དུས་) के विनेयजनों के हितार्थ भोट (तिब्बत) देश में सर्वत्र निधि के रूप में छिपाकर रखा गया और यह प्रार्थना की गई कि ये ग्रन्थ इनके अधिकारी शिष्यों को मिल जायें। भविष्य (अनागत) में यद्यपि कुतर्क एवं पक्षपात की भावना रखनेवाले साधक निधि सम्बन्धी इन (धर्म) ग्रन्थों पर विवाद करेंगे, किन्तु फिर भी कलियुग के अधिकांश धर्मात्मा (साधक) प्रायः निधिगत ग्रन्थों के अनुशीलन से निर्वाण लाभी होंगे। यह (धर्म) गूढ, स्पष्ट एवं विस्तृत है। इसके एक-एक अववाद (उपदेश = གདམས་པ་) से ही पुद्गल (सत्त्व) अवश्य मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त करेंगे। इसलिये पूर्वजन्म का संस्कार रखने वाले भाग्यवान् और अभ्यासी साधकों को चाहिये कि वह मृत्यु का स्मरण कर निधि सम्बद्ध धर्मग्रन्थों का अनुशीलन करें, क्योंकि इसके अनुशीलन से ही तुम इसी एक जन्म में निर्वाण को प्राप्त करोगे।

कलियुग में (बुद्धशासन), उनके अभिषेक एवं उपदेश दु:शीलों के चलते बाजार में बिकने वाले दूध की भाँति (ཚོང་འདུས་ཀྱི་འོ་མ་བཞིན་) अल्प मूल्य के रह जायेंगे, अनेक परम्पराएं (བརྒྱུད་པ་) उनकी विशुद्ध समय (དམ་ཚིག་) परम्परा को विच्छिन्न कर व्यवधान (आवरण) डालेंगे। उसके मूलरूप में नानाविध अविश्वास के संमिश्रण हो जाने के कारण उसके अधिष्ठान (བྱིན་གྱི་རླབས་) में दूषितता उत्पन्न हो जायेगी। अतएव निधि से आविष्कृत ये धर्म ग्रन्थ तथा सम्पूर्ण उपदेश महापुरुषों द्वारा आविष्कृत होने के कारण परम पवित्र एवं अद्वितीय हैं।

यह निधिपक्ष-तीन परम्पराओं[1]—1. अभिसन्धि परम्परा (དགོངས་པའི་བརྒྱུད་), 2. श्रुति परम्परा (སྙན་ཁུང་གི་བརྒྱུད་) और 3. संकेत परम्परा (བརྡའི་བརྒྱུད་) के ऊपर और तीन परम्पराओं को मिलाने (जोड़ने) से पूर्ण एवं समृद्ध है। इसलिये भोट (तिब्बत) में यह षट् परम्परा वाले मत के नाम से विख्यात है। पूर्व तीन 1. अभिसन्धि, 2. श्रुति और 3. संकेत परमपरा का संक्षिप्त उल्लेख 'धी:' पत्रिका के 13वें अंक में किया जा चुका है। इनके ऊपर तीन अन्य परम्पराएं ये हैं—4. प्रणिधानाभिषिक्त परम्परा (སྨོན་ལམ་དབང་བསྐུར་), 5. शासन(आगम)व्याकृत परम्परा (བཀའ་བབས་ལུང་བསྟན་བརྒྱུད་) और 6. डाकिनी अर्पित परम्परा (མཁའ་འགྲོ་མ་གཏད་རྒྱའི་བརྒྱུད་) ।

4. प्रणिधानाभिषिक्त परम्परा—जो निधि के अधिकार प्राप्त महापुरुष (महापुद्गल) के द्वारा ही उन निधिगत पवित्र ग्रन्थों का आविष्कार हो।

5. शासन(आगम)व्याकृत परम्परा—जो निधि के आविष्कार प्राप्त महापुरुष द्वारा अपने चरमज्ञान प्रदान कर भविष्यवाणी के साथ आश्वस्त किया गया हो।

6. डाकिनी समर्पित परम्परा—डाकिनियों की सांकेतिक भाषा (བརྡའི་ཡི་གེ་) में लिखित ग्रन्थों की रचना, जिसे सुदृढ़ पेटिकाओं में बन्द कर उसे सुरक्षित वज्र-शिलाओं एवं सरोवरों आदि में अदृश्य रूप से छिपाकर अपने-अपने निधिपतियों को सौंपा गया हो और उन्हें नियत समय पर निधिपतियों की प्रेरणा से निधि आविष्कारक महापुरुषों द्वारा हस्तगत किया गया हो।

---

1. भाष्यतन्त्रार्णव में कहा है—"बुद्ध, बोधिसत्त्व और योगी ये तीनों क्रमश: अभिसन्धि, विद्या और श्रुतिपरम्परा से आविर्भूत होते हैं"। बुद्ध के लिये 1. अभिसन्धि परम्परा, विद्याधर के लिये 2. संकेत परम्परा और पुद्गल के लिये 3. श्रुतिपरम्परा कही गई है। (विस्तृत जानकारी के लिये द्र०-'धी:' अंक 13, पृ० 87-92)

विशेषतया—निधि में छिपाए गये बहुत से धर्मग्रन्थ डाक-डाकिनी की संकेत भाषा में लिखे गये होते हैं, इसलिये इन ग्रन्थों का भाषान्तर अधिकारी (पुरुष) पुद्‌गल के अतिरिक्त अनधिकारी पुरुष के द्वारा करना संभव नहीं है। ये साधारण व्यक्तियों से अबाधित होने से प्रामाणिक हैं। इनकी मौलिक भाषा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। इसके शब्द अभ्रमित होते हैं तथा इसका यथार्थ अर्थ डाकिनियों की गुप्त भाषा में लिखे होने से गम्भीर एवं पवित्र होते हैं। अनधिकारी व्यक्ति (साधक) चाहे कितना भी कुशाग्र बुद्धि क्यों न हो, वह इन ग्रन्थों का अंश मात्र ज्ञान पाने में असमर्थ होता है। इस प्रकार इन ग्रन्थों को निधि से निकालने वाले पुरुष (पुद्‌गल) असाधारण होते हैं।

तिब्बत में वज्रयान गुह्यमन्त्र के सामान्य बुद्धशासन के द्वारा, विशेषतया गुह्यनिधि सम्बन्धी महान् कार्यों द्वारा अनन्त (असीम) विनेयजनों का उद्धार करने वाले आचार्य पद्मसंभव ही थे।

महापरिनिर्वाणसूत्र[1] में कहा भी गया है—"मेरे परिनिर्वाण के अनन्तर लगभग द्वादश वर्ष पश्चात् धनकोषद्वीप (རྫས་ཀྱི་ཕའི་མཚོ་གླིང་) में मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ पुरुष का प्रादुर्भाव (आविर्भाव) होगा"। इस प्रकार की भविष्यवाणी से यह सिद्ध होता है कि ऐसे महान् आचार्य (पद्मसंभव) दुर्गममार्ग-क्रम के क्रमिक अभ्यासी सत्त्व (पुद्‌गल) ही नहीं थे, अपितु इन्होंने दुर्दम्य (གདུལ་དཀའ་བ་) मनुष्यों-अमनुष्यों को नानाविध उपायों से विनीत कर उन्हें शाक्यमुनि बुद्ध के सन्मार्ग पर लाने के लिये विविध रूप में अवतार लिया।

इन्होंने अनागत (भविष्य) विनेयजनों के हितार्थ तथा बुद्धशासन को अविच्छिन्न बनाये रखने के उद्देश्य से भारत, नेपाल एवं तिब्बत के अधिकांश (भूभाग में) धर्मार्थ (ཆོས་གཏེར་) हेतु औषधियों, समय द्रव्यों एवं अपार संख्या में धर्मग्रन्थों को निधि के रूप में छिपाकर रखा।

सामान्यतया (इन्होंने तिब्बत में) अपने विनेयजनों को सद्धर्म, विशेषतया-महायोग[2], अनुयोग एवं अतियोग सम्बन्धी अनन्त (कोटिशत) तन्त्रों से सम्बद्ध उपदेश एवं उनकी कर्मविधियों की देशना की।

1. आर्यमहापरिनिर्वाणमहायानसूत्र, तो० 120, ताईशो न० 374, 375, नाञ्जिओ न० 113, 114
2. द्र०-'धी:' अंक 31, पृ० 77-82

निधि से सम्बद्ध इन समस्त उपदेशों (शिक्षाओं) को पाँच प्रकार के पीत पत्रों (ཤོག་སེར་) पर डाकिनी की संकेत भाषा में लिखवाकर विभिन्न निधि-पात्रों (གཏེར་སྒྲོམ་) में रखा गया और बाद में इन निधि-पात्रों को मुहरबन्द करके स्वयं पद्मसंभव एवं उनके शिष्यों ने पृथक्-पृथक् गुप्त निधियों में छिपाया और निधि-पालों को इन ग्रन्थों के संरक्षण का भार समर्पित कर दिया गया।

इसके अलावा महापण्डित विमलमित्र, धर्मराज ख्रि-स्रोङ ल्दे-ब्चन (ཁྲི་སྲོང་ལྡེའུ་བཙན་) एवं उनके पुत्र महान् अनुवादक वैरोचन, बुद्धज्ञान (སངས་རྒྱས་ཡེ་ཤེས་), आकाशगर्भ (ནམ་མཁའི་སྙིང་པོ་) आदि आचार्यों ने भी अनेकानेक धर्मग्रन्थों को गुह्य निधियों में छिपाया। कालान्तर (भविष्य) में जब विनेयजनों का उद्धार करने का समय आयेगा तब इन निधियों के अधिकारी पुरुषों (सत्त्वों) एवं अवतारी सत्त्वों का क्रमशः प्रादुर्भाव होगा और वे इन पवित्र ग्रन्थों की सहायता से बुद्धशासन का विस्तार एवं प्राणिमात्र का प्रणिधान (སྨོན་ལམ་) कर कल्याण करेंगे।

गम्भीर शुद्धाभास एवं आभिप्रायिक (आध्यात्मिक) निधियों का प्रादुर्भाव

1. गम्भीर शुद्धाभास निधि[1]—बोधिसत्त्व के प्रणिधान (བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་སྨོན་ལམ་) में कहा है—"सभी देह धारियों को आकाश से पक्षियों की बोली, वृक्षों के भीतर एवं सूर्य की किरणों के प्रकाश से भी धर्म की ध्वनि निरन्तर सुनाई दे"। क्योंकि बोधिसत्त्व सद्धर्म के धनी होते हैं, इसलिये उन्हें महाभूतों की ध्वनि एवं पशु-पक्षी आदि के बोली से भी धर्म की ध्वनि अविच्छिन्न रूप से सुनाई पड़ती है। इन्हें बुद्ध और बोधिसत्त्व स्वयं दर्शन देकर धर्मोपदेश करते हैं।

सर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिसूत्र[2] में कहा है—"हे विमल तेज! धर्म के इच्छुक (अभिकांक्षिक) महाबोधिसत्त्व, जो शुद्ध हृदययुक्त, उपसम्पदा प्राप्त एवं नम्र स्वभाव युक्त होते हैं, चाहे वे अन्य लोक धातुओं में वास करने वाले ही क्यों न हों, भगवान् बुद्ध उन्हें समय-समय पर (स्वयं) दर्शन देकर धर्मोपदेश करते हैं।

---

1. शुद्धाभास (धर्म) निधि—जब सिद्ध पुरुषों के विशुद्धचित्त में बुद्ध एवं बुद्धक्षेत्र के दर्शन होते हैं अथवा बाह्याभ्यन्तर सभी विषय शुद्ध रूप में अवभासित होते हैं, तब उनके मुख से बुद्ध और बुद्धक्षेत्र का वर्णन अनायास उद्‌गार के रूप में होता है। उसे शुद्धाभास धर्मनिधि कहते हैं। (भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 59)
2. आर्यसर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिनाममहायानसूत्र, तो० 134

विशेषतया महान् आचार्यों की दृष्टि में (གཟིགས་ངོར་) समस्त रूपादि विषय शुद्धाभास (དག་པའི་སྣང་བ་) के रूप में ही प्रतिभासित होते हैं, अशुद्ध रूप में नहीं। तीनों काल में वे तीन प्रमुख (लोगों से)—गुरुओं, इष्टदेवों एवं डाकिनियों से प्रतिदिन नित्य, नियमित रूप से धर्म चर्चा करते हैं। इस प्रकार उनसे अनन्त गम्भीर उपदेश सुनते हैं, साथ ही अधिकारी पुरुषों (सत्त्वों) को वे उनकी रुचि एवं बुद्धि के अनुसार शुद्धाभास सम्बद्ध उपदेश देते हैं।

2. आभिप्रायिक (आध्यात्मिक) निधि—इसकी प्रसिद्धि के सम्बन्ध में भी मञ्जुश्रीपरिपृच्छानाममहायानसूत्र[1] में कहा है—"हे मञ्जुश्री! ये चारों महाभूत आकाशनिधि से प्रादुर्भूत (आविर्भूत) हुए हैं तथा सभी धर्म बुद्ध के आध्यात्मिकनिधि (རྒྱལ་བའི་ཐུགས་གཏེར་) से प्रादुर्भूत हुए हैं, अतः निधि के उपभोग (परिभोग) के अभिप्रायार्थ को जानकर उससे लाभ प्राप्त करो"।

इसके अनुरूप आर्यपुद्गलों (पुरुषों) को (बुद्ध के) आध्यात्मिक (आभिप्रायिक) निधियों से सद्धर्म का निधि(भण्डार) उपलब्ध होने की भविष्यवाणी की गई है।

धर्मसङ्गीतिसूत्र[2] में भी कहा है—"शुद्धचित्त वाले बोधिसत्त्व अपनी इच्छा के अनुसार सभी अववाद-अनुशासनी प्राप्त कर लेते हैं"। पुनः इसी सूत्र में कहा है—"परमार्थ ज्ञान होने पर चित्त (बुद्धि) से लाखों धर्मनिधियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। इस प्रकार भारत, नेपाल एवं सम्पूर्ण भोट (तिब्बत) में इन महासिद्धाचार्यों के असंख्य पवित्र एंवं गम्भीर आध्यात्मिक उपदेश विद्यमान हैं।

संक्षेप में धर्म, समय-द्रव्य एवं धन आदि का द्वार (कपाट) सभी की मुक्ति (निर्वाण) के लिये उद्घाटित किया गया है। कलियुग के अन्त में जहाँ चारों ओर सद्धर्म (དམ་པའི་ཆོས་) का पालन कर्ता कोई नहीं रहेगा, न विनय तथा सूत्र शासन रहेगा, वहाँ भी (गुह्यमन्त्र) वज्रयान शासन का छिट-फुट (खण्ड-खण्ड = ཁོལ་བུ་ཁོལ་བུ་) रूप में प्रचार होता रहेगा। जगत् के समस्त दुर्दान्त जनों (གདུལ་དཀའ་བ་) का उद्धार (उत्तारण) करने में ये निधियाँ उदारतापूर्वक नियमित रूप से अपने परोपकारी महान्

1. आर्यमञ्जुश्रीपरिपृच्छानाममहायानसूत्र, तो० 172, ताईशो न० 473, 661, 662, नाञ्जिओ न० 264, 265, 995
2. आर्यधर्मसङ्गीतिनाममहायानसूत्र, तो० 238

समुदाचार कार्य का सम्पादन करेंगे। आचार्य (गुरु) पद्मसम्भव ने भी कहा है—''कलियुग में बुद्धशासन का संरक्षण तथा पालन (སྐྱོང་བ་) समस्त निधियों के द्वारा होगा''।

वस्तुतः सूत्र एवं तन्त्र के देश, काल और शास्ता का भेद नहीं है। मनुष्यलोक में महायानसूत्रों के साथ प्रायः तन्त्रों की भी उत्पत्ति हुई। अधिकांश अनुत्तरयोगतन्त्र सिद्धाचार्यों द्वारा क्रमशः लाये गये। उदाहरण के लिये—सिद्ध सरह (769-809 ई०) के द्वारा बुद्धकपाल, सिद्ध लुइपा (769-809) द्वारा योगिनीसंचर्या, सिद्ध कम्बल और सिद्ध सरोरुहवज्र द्वारा हेवज्र, आचार्य ललितवज्र द्वारा कृष्णयमारि, आचार्य गम्भीरवज्र द्वारा वज्रामृत, सिद्ध कुक्कुरिपाद द्वारा महामाया और पिटोपा द्वारा कालचक्रतन्त्र लाया गया।[1]

ये ऐतिहासिक तथ्य भारत के अनेक बौद्ध पण्डितों (आचार्यों), सिद्धों एवं तिब्बत के नवीन और प्राचीन अकायिक (རིས་མེད་) कल्याणमित्रों (དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་), निधि के शासकों (आविष्कारकों), (आचार्य पद्मसंभव द्वारा व्याकृत महापुरुषों) और सिद्धों के जीवनचरितों में भी विस्तार से उल्लिखित हैं।

•

1. भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 146-147

बुद्ध-प्रतिमा विज्ञान : एक विहङ्गम दृष्टि

—प्रो० अँगने लाल—

[बौद्ध वाङ्मय में 'आत्रेयतिलक', 'प्रतिमालक्षण' आदि अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें बुद्धों बोधिसत्त्वों के भिन्न-भिन्न रूपों की प्रतिमाओं के लक्षण, स्वरूप और निर्माण की प्रक्रिया विस्तार से बताई गई है। जबकि भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपनी मूर्ति बनाने व उसकी पूजा का निषेध किया था फिर भी यह प्रक्रिया कब और कैसे शुरू हुई, इस विषय पर प्रस्तुत लेख में प्रकाश डाला गया है। साथ ही बुद्धमूर्ति निर्माण के बौद्ध साहित्यिक स्रोतों, चीनी एवं तिब्बती साक्ष्यों की भी चर्चा की गई है।]

भारतीय प्रतिमा विज्ञान के इतिहास में बौद्ध मूर्तिकला का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रतिमा विज्ञान (आइकनोग्रॉफी) का अभिप्राय प्रायः उन प्रतीकों और मूर्तियों से है, जो धार्मिक महत्त्व की और पूजित रही हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध ने स्वयं ही अपनी (बुद्ध) मूर्ति बनाने का निषेध किया था। यही कारण था कि काफी समय तक भगवान् बुद्ध की प्रतिमाएँ नहीं बनाई गईं। उस समय बुद्ध के अनुयायी उनकी पूजा-आराधना, बुद्ध के प्रतीकों-यथा चैत्य (चेतिय), शरीर धातु (शारीरिक धातु), बोधिवृक्ष (महाबोधि) के माध्यम से करते थे। ये प्रतीक बुद्ध के ही प्रतिरूप (बुद्ध रूप) माने जाते थे।

वन्दामि चेतियं सब्बं सब्ब ठानेसु पतिट्ठितं ।
सारीरिक धातु महाबोधिं बुद्ध रूपं सकलं सदा ।।[1]

अवदानशतक के अनुसार-चैत्य और स्तूप के रूप में बुद्ध पूजा उनके जीवनकाल में भी प्रचलित थी। बिम्बिसार ने बुद्ध के केश-नख के ऊपर अपने राज प्रासाद में स्तूप की स्थापना की थी जिसकी वह प्रतिदिन वन्दना करता था।[2] तपस्सु और भल्लिक ने बुद्ध से केश धातु प्राप्त कर अपने देश वाल्हीक (अफगानिस्तान) में उन्हें स्थापित कर स्तूप का

---

1. भदन्त बोधानन्द, बुद्धचर्या पद्धति, पृ० 36, बुद्ध विहार, लखनऊ, 1979, पाँचवाँ संस्करण।
2. अवदानशतक, जि०-1/308/25, जे० एस० स्पेयर, सेन्टपीटर्सवर्ग, 1902; अवदानशतक, पृ० 136/20-29, पी० एल० वैद्य, दरभंगा, 1958

निर्माण करवाया था।[1] ऐसे ही केश-नख धातु के ऊपर बनाये गये एक स्तूप के ऊपर 'यष्टि' भी लगाई गई थी।[2]

बुद्ध के व्यक्तित्व के लक्षण

बुद्ध अनुत्तर (अनुत्तरो) पुरुष थे। पालि साहित्य में उन्हें 32 महापुरुष लक्षणों (द्वात्रिंश महापुरुष लक्षण) से युक्त बताया गया है।[3] साथ ही वे 80 अनु-व्यञ्जनों (गौण लक्षणों) से भी परिपूर्ण थे।

बौद्ध साहित्य से यह सूचना मिलती है कि बुद्ध के जीवनकाल में ही जब उनके अनुयायियों ने अपने आराध्य और पूज्य (बुद्ध) की मूर्ति बनानी चाही तो बुद्ध ने स्वयं ही उस कार्य को निषिद्ध बतलाकर रोक दिया था। अस्तु, प्रारम्भ में बुद्ध की प्रतीक-पूजा ही प्रचलित रही। स्तूप, बुद्ध का प्रतीक था। ये प्रतीक स्तूप 4 प्रकार के थे।

(1) शारीरिक स्तूप,

(2) पारिभौगिक स्तूप,

(3) घटना परक या उद्देशिक स्तूप और

(4) पूजा परक स्तूप।

शारीरिक प्रतीक के अन्तर्गत, शरीर-धातु (अस्थि, नख, केश) सम्बन्धी स्मारक-चैत्य और स्तूप निर्मित हुए थे। पारिभौगिक प्रतीक वे थे जो उन वस्तुओं पर बनाये गये थे, जिनका बुद्ध ने परिभोग किया था। यथा पिण्डपात्र, छत्र, चीवर, बोधिमण्ड आदि। घटना परक स्तूप वे स्मारक थे जो गौतम बुद्ध के जीवन की किसी न किसी महत्त्वपूर्ण घटना से सम्बन्धित थे।

तिब्बती बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि प्रारम्भ में निर्मित ये घटना परक स्तूप 8 थे जो इस प्रकार थे—

---

1. भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ० 3-4 (श्रीमती डॉ० यमुना, दिल्ली, 1993), विनय महावग्ग, पृ० 56 (नवनालन्दा महाविहार संस्करण); बुद्ध कथा, पृ० 70, पा० टि०।
2. दिव्यावदान, पृ० 29/9-10; पी० एल० वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1959
3. लक्खन सुत्त, दीघनिकाय में।

(1) जन्म स्तूप (लुम्बिनी), (2) बोधिसत्त्वस्तूप (कपिलवस्तु), (3) मार विजय स्तूप (बोधगया), (4) धर्मचक्र प्रवर्तन स्तूप (सारनाथ), (5) यमक प्रातिहार्य स्तूप (श्रावस्ती), (6) अवतरण स्तूप (संकिसा), (7) द्वन्द्व स्तूप (राजगृह=जहाँ देवदत्त के द्वारा बुद्ध को मारने का प्रयास किया गया था) और (8) महा परिनिर्वाण स्तूप (कुशीनगर)। उद्देशिक प्रतीक वे स्तूप थे जो बुद्ध-जीवन की किसी विशेष घटना को उद्दिष्ट कर बनाये गये थे। यथा—जन्म का प्रतीक हाथी, महाभिनिष्क्रमण का प्रतीक अश्व, ज्ञान-प्राप्ति का प्रतीक बोधिवृक्ष, प्रथम धर्म उपदेश का प्रतीक धर्मचक्र था।

वास्तव में उद्देशिक और घटनापरक स्तूप एक प्रकार के दो रूप थे। सारनाथ में उक्त तीनों प्रकार के पूज्य बौद्ध स्तूप प्राप्त होते हैं। वहाँ का धर्मराजिक स्तूप, शरीर धातु युक्त स्तूप है। चौखंडी स्थान पर सबसे पहले बुद्ध और उनके पूर्व पाँच साथियों (पञ्चवर्गीय भिक्षुओं) की भेंट हुई थी अस्तु उस स्थान पर निर्मित बौद्ध स्तूप, घटना परक स्तूप था। जहाँ प्रथम भेंट को उद्दिष्ट कर स्तूप का निर्माण किया गया था। पूजा परक स्तूप वे थे जो बुद्ध की अनुपस्थिति में पूजे जाते थे। उनकी पूजा-वन्दना कर बुद्ध अनुयायी श्रद्धालुजन सन्तोष कर लेते थे। इन्हें ही 'वोटिक स्तूप' कहा गया है। सारनाथ का धम्मेक स्तूप, पूजापरक स्तूप (वोटिक स्तूप) है जो बुद्ध की अनुपस्थिति में उनकी पूजा-वन्दना के लिये निर्मित करवाया गया था। पूजापरक स्तूप प्रायः शारीरिक धातु स्तूप के चारों ओर बनाये जाते थे।

स्तूपों में प्राणप्रतिष्ठापना भी की जाती थी। यह प्राणप्रतिष्ठापना भगवान् बुद्ध के इस सारसूत्र के प्रतिनिधान के साथ होती थी।

ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह ।
तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणोति ।।

(महावग्ग, पृ० 62, बौद्धभारती, वाराणसी, संस्करण)

यही कारण है कि नालन्दा, सारनाथ, श्रावस्ती तथा अन्य बौद्ध केन्द्रों के पूजापरक स्तूपों से इस गाथा से अंकित ताम्रपत्र तथा मुद्रायें प्राप्त होती हैं। जब तक स्तूप में यह गाथा मूर्तिष्ठ नहीं की जाती तब तक स्तूप पूज्य नहीं माना जाता था। यह परम्परा

सातवीं शताब्दी तक अनवरत चलती रही। उसके बाद यह समाप्ति की ओर प्रतीत होती है, क्योंकि विहारों में बुद्ध मूर्तियाँ, इस सद्धम्म सार सूत्र के बिना भी प्राप्त होती हैं। यद्यपि यत्र-तत्र यह पूर्व परम्परा भी चलती रही।

बुद्ध मूर्ति निर्माण के बौद्ध साहित्यिक स्रोत

सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के 'कुस जातक' की अट्ठकथा में यह उल्लेख मिलता है कि बुद्ध की सुनहरी मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। जिन्हें राजप्रमुख स्वर्णकार बनाते थे।[1] बुद्धघोष ने विनय अट्ठकथा (पाँचवीं शताब्दी) में बताया है कि लोग बुद्ध मूर्ति को भोजन समर्पित करते थे।[2] इसी प्रकार बुद्धघोष कृत 'पपंच सूदनी' और 'मनोरथ पूर्णनी' में भी बुद्ध की मूर्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

सिंहल (आधुनिक श्रीलंका) में रचित पालि ग्रन्थ महावंश (पाँचवीं-छठवीं शताब्दी) के अध्ययन से यह पता चलता है कि मौर्य सम्राट् अशोक (269-232 ई०) ने किसी नाग मूर्तिकार के द्वारा बुद्ध-मूर्ति का निर्माण करवाया था। उस मूर्ति में झलकते हुए व्यक्तित्व को देखकर मौर्य सम्राट् अशोक नत-मस्तक हो बुद्ध का अनुयायी बन गया था।[4] इसी ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि दूसरी बुद्ध-मूर्ति को सिंहल के शासक दुट्ठगामिनी के शासनकाल (ई० पू० 101-77) में महास्तूप की धातुशाला में स्थापित किया गया था।[5]

दिव्यावदान (प्रथम से तृतीय शताब्दी ई०) से ज्ञात होता है कि बुद्ध का चित्रण शाक्यमुनि के जीवनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। यहाँ कहा गया है कि रोरुक के राजा रुद्रायण रत्नाधिपति ने मगधराज बिम्बिसार के पास रत्न-उपहार भेजे। मगधराज वस्त्राधिपति बहुत असमंजस में था कि रत्नोपहार के बदले में क्या भेजा जाय। उसने अपने मन की इस भावना को भगवान् बुद्ध से बताया। तथागत ने कहा "वस्त्राधिप! कपड़े

---

1. बी० एन० चौधरी, 'डेट ऑफ बुद्ध वर्शिप' दि महाबोधि, वा० 75, नं० 7 (जुलाई 1967) पृ० 244
2. विनय अट्ठकथा, 3/264/5-9
3. डॉ० एस० के० वर्मा, आर्ट एण्ड आइकनोग्रॉफी ऑफ बुद्ध इमेज, पृ० 6 (दिल्ली, 1996)
4. महावंस, 5/87-93 (बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1996)
5. महावंस, 3/22-74 (उपर्युक्त, वाराणसी संस्करण)

पर मेरा (बुद्ध का) चित्र बनवाकर भेज दो।'' बिम्बसार को अच्छा लगा और उसने कुशल चित्रकारों को बुलवाकर बुद्ध का चित्र बनाने का निर्देश दिया। लेकिन बुद्ध की ओज-प्रभा के कारण उनका चित्र न बन सका। अन्त में बुद्ध के निर्देशानुसार उनकी छाया (प्रतिबिम्ब) के आधार पर बुद्ध का चित्र बनाया गया और उसे रंगों से भरकर रोरुक के राजा के पास प्रत्युपहार रूप में भेजा गया।[1]

दिव्यावदान के कुणालावदान से ऐसा आभासित होता है कि सम्राट् अशोक ने कुक्कुटाराम में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा देखी थी (दृष्टो मयाद्याप्रतिमः स्वयम्भूः)[2] यहाँ बुद्ध को 'स्वयम्भू' कहा गया है, जो उचित ही है, क्योंकि वे बिना किसी की सहायता के स्वयं विमलज्ञान प्राप्त कर बुद्ध बने थे। वस्तुतः वे 'स्वयम्भू' ही थे।

चीनी साक्ष्य

भारत की सद्धर्म यात्रा पर आये हुए चीनी यात्री फाहियान (चौथी शताब्दी) और ह्वेनसांग (सातवीं शताब्दी ई०) ने बुद्ध के जीवनकाल में ही बुद्ध मूर्ति के निर्माण का वर्णन किया है। फाहियान के अनुसार बुद्ध की दीर्घ अनुपस्थिति में उनके दर्शनों के लिए राजा प्रसेनजित ने चन्दन की एक बुद्ध-प्रतिमा बनवाकर, जहाँ वे प्रायः बैठा करते थे श्रावस्ती में उसी स्थान पर उच्चासन के ऊपर स्थापित की थी।[3]

ह्वेनसांग के अनुसार कौशाम्बी के राजा उदयन ने बुद्ध के दर्शन के लिए एक चन्दन की बुद्ध मूर्ति बनवाकर स्थापित की थी और उसके ऊपर छत्र का भी निर्माण करवाया था।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग ने उपर्युक्त फाहियान के विवरण को पढ़ा या सुना होगा। तभी उसने बुद्ध मूर्ति के निर्माण के उसी कथानक को इस प्रकार से अङ्कित किया कि प्रसेनजित ने जब यह सुना कि उदयन ने भगवान् बुद्ध की चन्दन मूर्ति बनवायी है तो उसने भी बुद्ध की चन्दन की मूर्ति बनवायी।[5] फाहियान ने श्रावस्ती के जिस विहार को

---

1. दिव्यावदान, पृ० 545-548 (ई० बी० कावेल, कैम्ब्रिज, 1886); दिव्यावदान, पृ० 465-466 (पी० एल० वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1959)
2. वही, पृ० 246/27 (मिथिला विद्यापीठ संस्करण)
3. एच० ए० गाइल्स, द ट्रवेल्स ऑफ फाहियान, पृ० 30-31 (लन्दन, 1966)
4. सैमुअल बील, बु० ए० ऑफ द बैस्टर्न वर्ल्ड, वा० 3, पृ० 235-36 (दिल्ली, 1969)
5. सैमुअल बील, ह्वेनसांग, पृ० 4, पा० टि० (दिल्ली, 1969)

गुप्त युग में देखा था, हर्ष युग में ह्वेनसांग ने भी उसे देखा। यद्यपि वह विहार उजाड़ अवस्था में था तथापि उसमें बुद्ध-प्रतिमा स्थापित थी। उल्लेखनीय है कि श्रावस्ती के पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त विहार संख्या 3 में बुद्ध की खड़ी हुई पत्थर की मूर्ति प्राप्त हुई थी।[1] महासांघिक निकाय के एक ग्रन्थ 'एकोत्तरागम' में भी उदयन द्वारा स्थापित पाँच फिट ऊँची चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा का उल्लेख है जिसे सुनकर प्रसेनजित ने सोने की बुद्ध मूर्ति बनवायी थी[2]

तिब्बती बौद्ध साहित्य के साक्ष्य

तिब्बती इतिहासकार लामा तारनाथ ने लिखा है कि अशोक ने बुद्ध की दो मूर्तियाँ देखी थीं। एक तो कलिंग युद्ध के समय और दूसरी बौद्ध दीक्षा ग्रहण करने के समय पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में देखी थी।[3] फाहियान के अनुसार अशोक ने संकाश्य (संकिसा, जिला फर्रुखाबाद, उ० प्र०) में स्तम्भ के पीछे बुद्ध मन्दिर का निर्माण करवाया था और उसमें बुद्ध-मूर्ति स्थापित करवायी थी।[4]

लामा तारनाथ, बुद्ध के महापरिनिर्वाण के कुछ ही समय पश्चात् बुद्ध-मूर्ति का बनना मानते हैं।

उनके अनुसार जय, सुजय और कल्याण तीन भाइयों में से कनिष्ठ भाई कल्याण ने भगवान् बुद्ध की एक मूर्ति बनाई थी, जिसे उसकी माँ ने भगवान् बुद्ध के स्वरूपानुरूप बताया था, क्योंकि उस महिला ने भगवान् बुद्ध को उनके जीवनकाल में देखा था।[5]

इस प्रकार भारतीय, सिंहली, चीनी और तिब्बती साहित्य, भगवान् बुद्ध की मूर्ति के निर्माण का वर्णन करते हैं। इनमें से कुछ बुद्ध के जीवनकाल में ही और कुछ महापरिनिर्वाण के बाद उनकी मूर्तियों का निर्माण मानते हैं। इन साहित्यिक साक्ष्यों की

---

1. आ० स० इं०, एनुअल रिपोर्ट, वा० 11, पृ० 86-88, (कलकत्ता, 1880)
2. नलिनाक्षदत्त, द स्प्रेड ऑफ बुद्धिज्म एण्ड बुद्धिस्ट स्कूल, पृ० 130 (दिल्ली, 1980)
3. तारनाथ, हि० बु० इन० इण्डिया, पृ० 39, (शिमला, 1970)
4. एच० ए० गाइल्स, द ट्रेवेल्स ऑफ फाहियान, पृ० 25
5. जार्ज रोरिक एण्ड ए० एस० अल्टेकर, बायोग्राफी ऑफ धर्मस्वामिन, पृ० 67-69 (पटना, 1959)

पुष्टि अब तक पुरातत्त्व परक खोजों से नहीं हो पाई है। इसलिये इन पर पूर्णरूपेण विश्वास तो नहीं किया जा सकता, लेकिन इन्हें पूर्णरूपेण नकारा भी नहीं जा सकता।

बौद्ध निकायों से बुद्ध-मूर्ति कला पर प्रकाश

यह विचित्रता ही कही जायेगी कि बौद्ध साहित्य में बुद्ध रूप का बिस्तृत विवरण उनके 32 महापुरुष लक्षणों तथा 80 गौण लक्षणों का वर्णन, समान रूप में मिलने लगता है। साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि उस समय भी भारतीय कलाकार मूर्तिकला से सुपरिचित थे और मूर्तियों का निर्माण भी करते थे। फिर भी प्रारम्भिक काल अथवा ई० पू० के पहले बुद्ध की मूर्तियाँ क्यों नहीं बनाई गयीं, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। जबकि उनकी प्रतीकात्मक पूजा प्रचलित थी जिसे कुमारस्वामी '**प्रतिमा विहीन प्रतिमा विज्ञान**' कहते हैं।[1]

बौद्ध धर्म के विभिन्न निकायों ने बुद्ध मूर्ति के निर्माण और निषेध के भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किये हैं। मूल बौद्ध धर्म जिसे थेरवाद, स्थविरवाद या हीनयान कहा गया है, उसमें बुद्ध और उनके धर्म की एकरूपता स्थापित की गई है। वक्कलि ब्राह्मण को उपदेश देते हुए बुद्ध ने स्वयं कहा है कि जो मेरे धर्म को देखता अर्थात् समझता है, वास्तव में वही मुझे देखता और समझता है और जो मुझे देखता या समझता है वही मेरे धर्म को समझता है।

यो खो धम्मं पस्सति सो मं पस्सति
यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति।[2]

वे बुद्ध को मानव ही समझते थे। जिन्होंने परिश्रम करके ज्ञान प्राप्त किया था। वे (बुद्ध) मनुष्यों के ही नहीं देवताओं के शास्ता (सत्था देवमानुस्सानं) पुरुष थे। वे देवता नहीं थे। महापरिनिर्वाण के शताब्दियों बाद तक थेरवाद में बुद्ध प्रतिमा नहीं बनाई गई। भरहुत, साँची, बोधगया और अमरावती के भी प्रथम चरण में बुद्ध की मूर्तियाँ नहीं बनी थीं। वहाँ उनका प्रतीकात्मक अंकन ही मिलता है। साँची का एक नाम काकनाद भी था।

---

1. ए० के० कुमारस्वामी, द ओरिजिन ऑफ बुद्ध इमेज, पृ० 4-11
2. द्र०-जी० पी० मलल शेखर, डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, वा० 2 पृ० 799, (लन्दन, 1960)

सर जॉन मार्शल ने साँची से प्राप्त अभिलेखों में यह नाम उल्लिखित पाया था। इसे 'काकनाद बोट विहार' कहा गया है। साँची स्तूप की मूर्तियों से बुद्ध के प्रतिमा विज्ञान पर भी प्रकाश पड़ता है। इसके उत्तरी तोरण द्वार के पूर्वी स्तम्भ पर चक्र युक्त बुद्ध के दोनों चरण-चिह्न, पद्म पुष्प, धर्मचक्र और उसके ऊपर त्रिरत्न बना हुआ है। यह भगवान् बुद्ध के पूर्णकाय का प्रतीक है। इसकी ऊँचाई 4 मीटर[1] = 13 फीट 5 इंच है। इसके साथ ही यह लेख अंकित है कि काकनाद विहार में भगवान् बुद्ध की ऊँचाई का यही प्रमाण मापदण्ड है। **काकनाये भगवतोपमान लठी।**[2]

महासांघिक मत

वैशाली में सम्पन्न द्वितीय बौद्ध संगीति के बाद महासांघिक निकाय का आविर्भाव हुआ। महासांघिकों ने बुद्ध के मानवी स्वरूप को, दैवी और लोकोत्तर बना दिया। महासांघिकों का मुख्य आधार ग्रन्थ 'महावस्तु अवदान' है।[3]

सर्वास्तिवादी मत

पाटलिपुत्र के अशोकाराम में सम्पन्न तृतीय बौद्ध संगीति के समय सर्वास्तिवादियों का जन्म हुआ। मथुरा, गन्धार और काश्मीर इसके केन्द्र बने। इस सम्प्रदाय में भक्ति पर जोर दिया गया। दिव्यावदान, ललितविस्तर और अवदानशतक इस निकाय के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इसकी विशिष्टता बुद्ध की 'दो काय' कल्पना थी। इसमें बुद्ध के शारीरिक काय को 'रूपकाय' अथवा निर्माणकाय और सम्पूर्ण धर्म देशना को 'धर्मकाय' कहा गया। रूपकाय आस्रव रहित नहीं था। अस्तु 'सास्रव' था जिसे 'पुतिकाय'[4] भी कहा गया है। जिसका अर्थ है पुद्गलों-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान युक्त। इसी निर्माणकाय से बुद्ध

---

1. सर जॉन मार्शल तथा अलफर्ड फुशे, मानूमेन्ट्स ऑफ सांची, वा० 2, पृ० 248 (स्वाती पब्लिकेशन, दिल्ली, 1983), महोदय फुशे ने 4 मीटर को भारतीय 16 फीट बताया है, जो ग्राह्य नहीं है। प्रो० चन्द्रिका सिंह उपासक ने मुझे यह ऊँचाई 13 फीट 8 इंच बताई थी।
2. ए० कनिंघम, भिलसा टोप्स (बुद्धिस्ट मानूमेण्ट्स ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया), पृ० 154 (इन्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1968)
3. महावस्तु अवदान, खण्ड 1/2/8-9 (सं० एस० बागची, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1970)
4. चुल्लवग्ग, पृ० 293; द्र०-एस० के० वर्मन, आर्ट एण्ड आइकनोग्रॉफी ऑफ दि बुद्ध इमेज, पृ० 20

मूर्ति निर्माण की प्रेरणा मिली। ज्ञातव्य है कि कनिष्क सर्वास्तिवादी था। उसके समय में ही बुद्ध की मूर्ति प्रामाणिक रूप से बननी शुरू हुई।

महायानी मत

महायान सम्प्रदाय में बुद्ध को त्रिकाय माना गया। ये त्रिकाय इस प्रकार थे—

(1) रूपकाय या निर्माणकाय। यह बोधिसत्त्वकाय है, जिससे वे प्रज्ञा का अर्जन करते हैं।

(2) सम्भोगकाय, यह सम्बोधि प्राप्ति के बाद की अवस्था है। जिसमें रूपकाय या निर्माणकाय में अर्जित, प्रज्ञा को लोगों तक कल्याण के लिये देशना के माध्यम से पहुँचाने में वे आनन्द का अनुभव करते हैं।

(3) धर्मकाय, यह बुद्ध का धर्म ही है। (प्रतीत्यसमुत्पाद)

मूर्ति निर्माण और भक्ति

बुद्ध-मूर्ति के निर्माण में 'भक्ति' ने अहम भूमिका निभाई है। पालि बौद्ध साहित्य में भक्ति का पारम्परिक अर्थ में कोई महत्त्व नहीं था और इस 'भक्ति' शब्द का प्रयोग भी नहीं मिलता। महायान के प्रारम्भिक ग्रन्थ 'अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र' में बुद्ध मूर्ति की पूजा-अर्चना को पुण्यार्जन (बुद्ध दर्शन पुण्य) माना गया है। इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध की मूर्ति का निर्माण और अलंकरण पुण्यदायी है।[1] इस प्रकार हीनयान में आचार्य के प्रति श्रद्धा का स्थान महायान में मूर्ति-पूजा ने ले लिया था। धीरे-धीरे बुद्ध को, मानवस्वरूप के स्थान पर देवातिदेव रूप प्रदान कर दिया गया।

प्रथम बुद्ध मूर्ति कहाँ बनी?

भक्ति पर जोर देने वाले महायान ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ई० पू० के बाद के हैं। सिक्कों पर सबसे पहले बुद्ध-प्रतिमा का अंकन कुषाण सम्राट् कनिष्क के सिक्कों पर पाते

---

1. ए० के० नारायण, फर्स्ट इमेज ऑफ दि बुद्ध एण्ड बोधिसत्त्व आडियोलॉजी एण्ड क्रोनोलॉजो, इन 'स्टडीज इन बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ साउथ एशिया', पृ० 1-16

हैं। जिन पर बोडो, सकमनों बोडो, मेत्रगो बोडो अंकित है, जिनका क्रमश: अर्थ है बुद्ध, शाक्यमुनि बुद्ध और मैत्रेय बुद्ध।

कुषाण युग में ही मथुरा और गान्धार कला केन्द्रों में बुद्ध की अलग-अलग शैली की मूर्तियाँ बनीं। बुद्ध मूर्ति के प्राथमिक उद्भव के ये दो ही केन्द्र माने जाते थे। डॉ० ए० के० नारायण ने एक तीसरा मत यह प्रतिपादित किया है कि बुद्ध-प्रतिमा का पहली बार निर्माण काश्मीर-उद्यान (ओड्डियान) में हुआ।[1]

उद्यान (ओड्डियान)-काश्मीर प्रथम बुद्ध-मूर्ति उद्भव स्थल

डॉ० ए० के० नारायण के इस सिद्धान्त का आधार शक शासक मावेज का वह सिक्का है, जिसमें पाल्थी मारे एक व्यक्ति बैठा हुआ है। डॉ० नारायण इसे बुद्ध-मूर्ति मानते हैं। ज्ञातव्य है कि मावेज का शासनकाल ई० पू० 95 से 75 तक रहा। उसका राज्य उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी गान्धार तक फैला हुआ था। कराकोरम में मावेज के शिलालेख मिले हैं। यहीं चिलास द्वितीय के उत्कीर्णन सं० 18 में भी एक व्यक्ति पाल्थी मारे अंकित है। इसमें 'बुद्धओतस' लिखा है, जिसे डॉ० नारायण बोधिसत्त्व मानते हैं।[2] उल्लेखनीय है कि ईरानी शब्द 'बुत्तास्प' का अर्थ बोधिसत्त्व होता है।

ह्वाइटहेड महोदय, वी० ए० स्मिथ, ए० के० कुमारस्वामी आदि विद्वान् इसे बुद्ध का अंकन नहीं मानते।[3] यदि डॉ० नारायण के मत को मान भी लिया जाय तो स्वात का भूभाग (उद्यान=ओड्डियान) और काश्मीर, गान्धार के ही भाग थे। अस्तु इसे गान्धार कला के रूप में ही मानना चाहिए।

इस प्रकार बुद्ध-मूर्ति के प्रथम उद्भव के लिए मथुरा और गान्धार केन्द्रों पर ही विचार करना समीचीन है। इन दोनों केन्द्रों में बुद्ध मूर्तियों का निर्माण समसामयिक माना जाता है और यह युग प्रथम शताब्दी ई० पू० से प्रथम शताब्दी का निर्धारित किया जाता है।

---

1. ए० के० नारायण, फर्स्ट इमेज ऑफ दि बुद्ध एण्ड बोधिसत्त्व आडियोलॉजी एण्ड क्रोनोलॉजो, इन 'स्टडीज इन बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ साउथ एशिया', पृ० 5
2. एस० के० वर्मा, आर्ट एण्ड आइकनोग्रॉफी ऑफ दि बुद्ध इमेजस पृ० 41-44 (दिल्ली, 1996)
3. सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्, पृ० 428-29 (बौद्ध आकर ग्रन्थमाला प्रकाशन, 1993)

यह युग, शक-कुशाण युग था। दोनों कला केन्द्रों की मूर्ति-निर्माण शैली में बहुत अन्तर था। जहाँ गान्धार की बुद्ध मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव स्पष्टतया झलकता है वहीं मथुरा कला केन्द्र की बुद्ध मूर्तियाँ विदेशी प्रभाव से मुक्त और भारतीय कला तथा हाव-भाव दर्शाती हैं। गान्धार की बुद्ध मूर्ति का समय निर्धारित करना कठिन है जबकि मथुरा में कनिष्क के राज्यारोहण के दूसरे वर्ष (79 ई०) में बुद्ध-मूर्ति के निर्माण का प्रमाण मिल जाता है। दोनों कला केन्द्रों की बुद्ध मूर्तियों की प्रमुख विशेषताओं में तुलना इस प्रकार दिखाई पड़ती है।

गान्धार मूर्तिकला की विशेषताएँ

(1) बुद्ध के मुख-मण्डल की बनावट यूनानी देवता अपोलो की भाँति अण्डाकार है।

(2) बुद्ध के सिर के बाल जूड़े के रूप में बँधे हैं, जैसे कि रोम में अपोलो और एप्रोडाइट की यूनानी मूर्तियों में बँधे हुए मिलते हैं।

(3) बुद्ध के शरीर पर एक लम्बा चीवर है जो रोमन मूर्तियों के 'टोगा' की भाँति है।

(4) बुद्ध के चीवर की सिलवटें गहरी कोरकर बनाई गई हैं जैसी कि आगस्टस युगीन रोमन मूर्तियों में देखने को मिलती हैं।

(5) भगवान् बुद्ध की मूर्तियों में मूँछें बनाई गई हैं।

(6) मूर्तियों को जूते पहने हुए बनाया गया है।

(7) तपस्वी बुद्ध की मूर्ति में, कृषगात को केवल अस्थिपंजरमय बनाया गया है।

(8) मूर्तियाँ स्थूलकाय हैं।

मथुरा की बुद्ध मूर्तियों की विशेषताएँ

(1) मुण्डित मस्तक, ऊपर उष्णीष है।

(2) दोनों भौहों के मध्य महापुरुष लक्षण 'ऊर्णा' अंकित है।

(3) चौड़ा वक्षस्थल है। बहुधा बायाँ कन्धा चीवर से ढका है। ऐसी मूर्ति को 'एकांसिक' कहा जाता है। जबकि चीवर से दोनों जंघों सहित पूरे शरीर को आच्छादित कर बनी मूर्तियों को 'पारूप्पन' कहते हैं। कहीं-कहीं इसे 'उभयांसिक' भी कहा गया है।

(4) दाहिना हाय अभयमुद्रा में ऊपर उठा हुआ है।

(5) आसनमुद्रा में हाथ जाँघ पर है।

(6) खड़ी मूर्तियों में चीवर का छोर बायें हाथ से मुट्ठी में पकड़े हुए हैं।

(7) कमर में गाँठ लगी हुई पट्टी 'कायबन्ध' है जो भिक्षुओं के वस्त्रों का एक अंग भी रहा है।

(8) मूर्तियों का मुख स्मितियुक्त तथा नेत्र खुले हुए हैं और परिमित दृष्टिवाले हैं।

(9) दोनों पैर सीधे तने हुए हैं। कभी-कभी पैरों के मध्य कमल, पुष्पगुच्छ, सिंह अथवा मैत्रेय बोधिसत्त्व की उपस्थिति है।

(10) प्रभामण्डल सादा किन्तु किनारे हस्तिनख चित्रों से अलंकृत हैं।

(11) कुषाण कालीन इन बुद्ध मूर्तियों में आध्यात्मिक भाव से अधिक, शारीरिक भाव-भंगिमा पर जोर दिया गया है।[1]

(12) हथेली तथा तलवों पर धर्मचक्र या त्रिरत्न अंकित है।

(13) बुद्ध आसन पर आसीन हैं।

(14) हाथ की पाँचों उँगलियाँ जाल जैसी दिखाई पड़ती हैं, जिसे 'जालांगुलिकर' कहा गया है।

---

1. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा की मूर्तिकला, पृ० 21 (पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा, 1965)

गुप्तयुगीन बुद्ध मूर्ति निर्माण केन्द्र और विशेषताएँ

कला में उत्तरोत्तर विकास होता ही रहता है। गुप्तकाल तक आते-आते मथुरा एक धार्मिक केन्द्र तो रहा, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्तिकला का केन्द्र मथुरा से खिसक कर सारनाथ में स्थापित हो गया।[1] यद्यपि मथुरा कलाकेन्द्र में भी मूर्तियों का निर्माण होता रहा। सारनाथ केन्द्र में चुनार पत्थर की बौद्ध मूर्तियाँ निर्मित हुईं।

गुप्तयुगीन सारनाथ की बुद्ध मूर्तियों की विशेषताएँ

(1) मुख पर आध्यात्मिकता, ध्यान, शान्ति एवं स्मिति दिखती है।

(2) शरीर रचना में लावण्य है।

(3) बारीक वस्त्र पारदर्शी हैं जो मूर्तिकला के साथ ही वस्त्र निर्माणकला की उत्कृष्टता भी दर्शाते हैं।

(4) चीवर की सिकुड़न की रचना विशिष्ट है। कुषाण कला में सिकुड़न की धारियाँ खोदकर बनाई जाती थीं। लेकिन गुप्त युग में ये धारियाँ उभरी हुई बनाई गई हैं।

(5) प्रभामण्डल अलंकृत है, जबकि कुषाण काल में यह सादा होता था। केवल किनारा ही हस्तिनख कला युक्त था।

(6) घुँघराले बालों से अलंकृत मस्तक है। कुषाणकालीन मुण्डित मस्तक का लगभग अभाव सा दिखाई पड़ता है।

(7) दोनों भौहों के मध्य ऊर्णा का प्राय: अभाव है।

(8) अभयमुद्रा के अंकन में भी अन्तर हुआ है। कुषाणकाल में इस मुद्रा में दाहिना हाथ समकोण बनाते हुए कमर तक ही उठता है।

(9) दोनों पैरों के बीच दिखने वाली वस्तुएँ हट जाती हैं।

---

1. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा की मूर्तिकला, पृ० 30

(10) गुप्तकाल की बुद्ध मूर्तियों की हाथों की उँगलियाँ अलग-अलग दिखाई पड़ती हैं।

(11) कान लम्बे बनाये गये हैं और हाथ गाठों (घुटनों) तक (आजानुबाहु) हैं।

(12) हथेली और तलवों पर धर्मचक्र और त्रिरत्न चिह्नों का अभाव है। केवल सामुद्रिक रेखाएँ ही दिखाई पड़ती हैं।[1]

बुद्ध प्रतिमाओं की मुद्राएँ

यद्यपि मुद्राओं का अंकन, कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों में भी मिलता है (विशेषकर अभयमुद्रा का) तथापि गुप्तकाल में ही बुद्ध की विभिन्न आसन (मुद्राओं) वाली मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रमुख मुद्रायें इस प्रकार हैं—

(1) **ध्यानमुद्रा**—इसमें बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए हैं। दोनों हथेलियाँ एक के ऊपर एक अंक में रखी हुई प्रदर्शित हैं। प्रस्तर फलक में निम्न भाग में बोधिसत्त्व की मूर्ति बनी रहती है। यह मुद्रा बुद्ध की साधना अवस्था की प्रतीक है। ध्यानमुद्रा को 'वज्रासन मुद्रा' भी कहते हैं। यह वस्तुत: उस समय की ध्यानमुद्रा को दर्शाती है जब बुद्ध यह निश्चय कर ध्यान में बैठे थे कि चाहे मेरा शरीर, मांस, रुधिर आदि सूख जाये, लेकिन जब तक मैं सम्बोधि प्राप्त न कर लूँगा, तब तक इस आसन से नहीं उठूँगा।

(2) **भूमि स्पर्श मुद्रा**—इस मुद्रा में बैठे हुए बुद्ध का दाहिना हाथ आसन के नीचे भूमि को स्पर्श करता हुआ दिखाया गया है और बाँया हाथ अंक में ऊर्ध्व हथेली है। इस मुद्रा में यह दर्शाया गया है कि बुद्ध ने 'मार' पर विजय प्राप्त कर सम्बोधि या बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है। पृथ्वी इसकी साक्षी है। इस प्रकार की मुद्राओं में कभी-कभी बोधिवृक्ष का और कभी-कभी पृथ्वी का भी अंकन मिलता है। इस मुद्रा में बोधगया के महाबोधि मन्दिर की बुद्ध-मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

---

1. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा की मूर्तिकला, पृ० 30-31

(3) **धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा**—पद्मासन में बैठे हुए बुद्ध व्याख्यान देते हुए प्रदर्शित हैं। इसमें दाहिने हाथ का अँगूठा और कनिष्ठिका बाएँ हाथ की मध्यमिका (बीच की उँगली) को स्पर्श करती है। यह मुद्रा अविद्या के मण्डल को विच्छिन्न करती है और सारनाथ में प्रथम धर्मोपदेश की सूचक है। धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा की बुद्ध मूर्तियाँ श्रावस्ती, बोधगया, मथुरा आदि केन्द्रों से प्राप्त हुई हैं। इसे 'ग्रन्थि विमोचन मुद्रा' भी कहा गया है।

(4) **अभय मुद्रा**—इस मुद्रा में बुद्ध अपने बाँयें हाथ से संघाटी का निचला छोर पकड़े हुए हैं। दाहिना हाथ कुषाणकाल में कन्धे तक उठा हुआ है और करतल सामने बाहर की ओर है। इसमें बुद्ध भयभीत प्राणियों को निर्भय रहने का सन्देश दे रहे हैं (भयप्पत्ता च निब्भया) अभयमुद्रा में बुद्ध की बैठी और खड़ी हुई दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं। प्रो० सी० एस० उपासक का मत है कि शायद विश्व की सबसे ऊँची, खड़ी हुई अभयमुद्रा की बुद्ध-मूर्ति बमियान (अफगानिस्तान) की 55 मीटर (186 फीट) ऊँची मूर्ति थी। इस समय मूर्ति तोड़ दी गई है।[1]

(5) **वरद मुद्रा**—इस मुद्रा की मूर्तियाँ खड़ी हुई दशा में हैं। इनमें दाहिना हाथ नीचे की ओर सामने करतल किये हुए है। बायें हाथ से संघाटी को पकड़े हुए है। इन मुद्राओं के अलावा अफगानिस्तान में भगवान् बुद्ध की चलती-फिरती अवस्था में भी मूर्तियाँ मिलती हैं। ऐसी मुद्रा को 'चारिका मुद्रा' कहा जाता है। (द्रष्टव्य-हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन अफगानिस्तान, प्रो० सी० एस० उपासक)

महापरिनिर्वाण मूर्ति

बुद्ध मूर्तियों में महापरिनिर्वाण प्रकार की मूर्ति का भी उल्लेखनीय महत्त्व है। जिसमें अन्तिम समय में बुद्ध दाहिनी करवट दाहिने हाथ को सिर के नीचे मोड़कर रखे हुए और दाहिने पैर पर बाँया पैर सीधा रखे हुए हैं।[2] यह मूर्ति कुशीनगर में उनके महापरिनिर्वाण को दर्शाती है। प्रो० सी० एस० उपासक का कथन है कि इन विविध

---

1. सी० एस० उपासक, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन अफगानिस्तान, पृ० 154 (सारनाथ, वाराणसी, 1990)
2. देखिए-महापरिनिब्बानसुत्त (दीघनिकाय)

मुद्राओं की मूर्तियों में से भारत के समस्त गुहाविहार समूहों में केवल तीन मुद्राओं में ही भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ मिलती हैं। ये तीन मुद्रायें है—

(1) ध्यान मुद्रा, (2) धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा (जिसे प्रवचन मुद्रा भी कहते हैं) तथा (3) महापरिनिर्वाण मुद्रा।

इस प्रकार बौद्ध धर्म के विविध सांघिक निकाय भिन्न-भिन्न प्रकार से बुद्ध प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख करते हैं। यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी के आस-आस शाक्यमुनि बुद्ध की मूर्तियाँ अवश्य बनने लगी थीं। गुप्तकाल के आते-आते बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं वाली मूर्तियों का निर्माण होने लगा था। कला सौष्ठव, लावण्य और अन्तर्भाव एवं आध्यात्मिक भाव की दृष्टि से गुप्त युग बौद्ध मूर्तिकला के लिए स्वर्ण युग था। इस युग की निर्मित बुद्ध की तीन मूर्तियाँ विश्व में उत्कृष्ठ मानी जाती हैं। जिनमें दो खड़ी हुई हैं। दोनों में से एक मथुरा संग्रहालय में और दूसरी भारत के राष्ट्रपति भवन में है। तीसरी मूर्ति बैठी हुई सारनाथ से प्राप्त हुई है जो धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में है। यह तीसरी मूर्ति तीनों श्रेष्ठ मूर्तियों में भी सर्वोत्कृष्ठ है। निःसन्देह बुद्ध की विभिन्न प्रकार की मूर्तियों ने भारत के प्रतिमा विज्ञान के इतिहास के कलेवर को आपूरित ही नहीं किया, अपितु सुसमृद्ध भी किया है।

●

तन्त्र की सामान्य एवं संक्षिप्त व्यवस्था (2)

—छेरिंग डोलकर—

[आचार्य बुस्तोन रिन्पोछे द्वारा रचित ''सामान्य एवं संक्षिप्त तन्त्रोपन्यास रत्ननिधिद्वारोद्धाटक-कुञ्जी'' नामक ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद के क्रम में पारमितायान में मन्त्रनय की विशेषता के बाद प्रस्तुत अंक में ''तन्त्र के भेद'' सम्बन्धी परिच्छेद के प्रारम्भिक अंश का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।]

तन्त्र के भेद

चारों तन्त्र पर्याय, निरुक्ति और दो तन्त्र वर्गों में संग्रह भेद से तीन प्रकार के हैं। पर्याय के (पुनः) चार भेद हैं—1. चारों तन्त्रों के विभाज्य विषय, 2. प्रत्येक की विशेषता, 3. चार भेदों का निर्णय एवं 4. तन्त्रों की निर्णीत संख्या का निराकरण।

1. विभाज्य विषय

इसके छह भेद हैं—(क) चार प्रकार के रागों के शोधन के, (ख) चार पुद्गलों के वर्णों (जाति) के, (ग) चार प्रकार के त्याज्य क्लेशों के, (घ) चार प्रकार की तीक्ष्ण-मन्द आदि इन्द्रियों के, (ङ) चार प्रकार की हेतु अवस्थाओं की वासना एवं (च) सामान्य (चार) प्रहराभिसन्धियों एवं युगों के आधार पर विभाजन किया गया है।

(क) चार प्रकार के रागों के शोधन के आधार पर विभाजन

चार प्रकार के शोध्य राग के आधार पर तन्त्र चार प्रकार के हैं। **सम्पुट (तन्त्र)** में कहा है—

हासदर्शनपाण्याप्तिः द्वन्द्वालिङ्गनैस्तथा ।
तन्त्रेणापि चतुर्णां च चर्वयित्वा घुणः स्थितः ।।[1]

(हास, दर्शन, पाण्याप्ति, द्वन्द्वालिङ्गन एवं कीटक न्याय के आधार पर तन्त्र चार प्रकार के हैं)। कामधातु में चार प्रकार के रागी पुरुष होते हैं। जैसाकि **अभिधर्मकोश** में

1. द्र०-सम्पुट 6.3.49 एवं 7.1.2-3

कहा है—"द्वन्द्वालिङ्गनपाण्यास्तिहसितेक्षणमैथुना:" (3.69)। द्वन्द्वालिङ्गन, पाण्यास्ति, हास और ईक्षण (चार) मैथुन (राग) हैं।

इस प्रकार त्रायस्त्रिंश (लोक) से नीचे (के लोग=सत्त्व) द्वन्द्वालिङ्गन से, याम के लोग (=सत्त्व) आलिङ्गन से, तुषित के लोग पाण्यास्ति से, निर्माणरति के लोग हास से और परनिर्मितवशवर्ती के लोग (सत्त्व) देखने के राग से तृप्त (सन्तुष्ट) होते हैं। रूपधातु (लोक) से ऊपरी (लोक) के सत्त्व काम (राग) में अनासक्त रहते हैं। वहाँ राग रहित पुद्गलों को विनीत करने के लिए पारमितायान की देशना तथा विराग मार्ग द्वारा अविनेय रागी पुद्गलों के लिए तन्त्र की देशना हुई है। यथा **प्रदीपोद्योतन** में कहा है—"निमित्तं रागिणो जना:"[1] (रागी लोगों के लिए)।

इसमें परनिर्मितवशवर्ती लोक आदि में ईक्षण के द्वारा सन्तुष्ट होने वाले राग के प्रतिपक्ष में क्रियातन्त्र के देवी एवं देवताओं को परस्पर ईक्षण मात्र से सन्तुष्टि के आनन्द सुख का मार्गीकरण करने वाले क्रियातन्त्र का उपदेश दिया है। जैसाकि **सूक्ष्मविधि** में कहा है—"भगवान् की भृकुटि की ओर मुख मोड़ना चाहिए"। अन्यच्च "दक्षिण दिशा की ओर ससंकोच शालीन, शरीर को झुकाए हुए वरद मुद्रा में तारा देवी और वायीं दिशा की ओर गुह्यमन्त्रनय के अनुरूप ससंकोच शालीन पद्मकुल सुन्दरी अमोघपाश को देखना चाहिए"।

निर्माणरति लोक में हास के द्वारा सन्तुष्ट होने वाले राग के प्रतिपक्ष में चर्यातन्त्र के देवी एवं देवताओं को परस्पर हास मात्र से सन्तुष्ट होने के परमानन्द सुख का मार्गीकरण करने वाला चर्यातन्त्र का उपदेश दिया है। **वैरोचनाभिसम्बोधि(तन्त्र)** (तो० 494) में कहा है—"उसके दक्षिण में देवी, बुद्धाक्षी नामक किञ्चित् स्मित मुख वाली, प्रभामण्डल से पूर्ण, अतुलनीय परिशुद्धकाय (वाली), वह तो शाक्यमुनि की माता है"।

तुषित लोक में पाण्यास्ति के द्वारा सुन्तुष्ट होने वाले राग के प्रतिपक्ष में योगतन्त्र के देवी एवं देवताओं को परस्पर पाण्यास्ति मात्र से सन्तुष्ट होने वाले विरमानन्द सुख का मार्गीकरण करने वाला योगतन्त्र का उपदेश दिया है। **वज्रशेखर(तन्त्र)** (तो० 480) में कहा है—"वज्रदेवी किलिकिलारव (कोलाहल) करती हुई, वह स्वदेवी (देव) द्वारा

---

1. प्रदीपोद्योतन–सी० चक्रवर्ती, पृ० 2, के० पी० जायसवाल अनुशीलन संस्था, पटना।

जानु आलिङ्गित कर, उसके (भगवान् के) पार्श्व में सिर मोड़कर, सस्मित सर्वत्र देखते हुए भगवान् का हाथ पकड़ती है''।

त्रायस्त्रिंश लोक से नीचे के सत्त्व द्वीन्द्रिय समापत्ति से सन्तुष्ट होने वाले राग के प्रतिपक्ष में महायोगतन्त्र (अनुत्तरतन्त्र) के देव एवं देवियों को परस्पर द्वीन्द्रिय समापत्ति से सन्तुष्ट होनेवाले सहजानन्द सुख का मार्गीकरण करने वाला महायोगतन्त्र (अनुत्तरतन्त्र) का उपदेश दिया है। **श्रीगुह्यसमाज (तन्त्र)** में कहा है—

तथागतमहाभार्यां लोचनां वा विभावयेत् ।
द्वयेन्द्रियसमापत्या बुद्धसिद्धिमवाप्नुयात् ।। (गु० स० 7.18)

(तथागत की श्रेष्ठ भार्या लोचना आदि की भावना करें, द्वयेन्द्रिय समापत्ति (योग) से बुद्ध सिद्धि प्राप्त होगी)।

यदि कोई ऐसा कहें (प्रतिवाद करें) कि याम (लोक) के सत्त्व आलिङ्गन मात्र से सन्तुष्ट होने वाले राग वाले हैं इसलिए तन्त्र पाँच प्रकार के होने चाहिए। यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त पाण्याप्ति में भी आलिङ्गन सम्भव है और द्वीन्द्रिययोग में भी। अत: यह एक दूसरे में अन्तर्भुक्त होने से दोष नहीं लगेगा। इस प्रकार आनन्द आदि चार उपायतन्त्रों द्वारा प्रहेय पूर्वोक्त चार राग हैं। उन चार रागों के प्रहाण (नाश) के लिए चार विरागों को ध्वस्त कर अपरिवर्तित होना फलतन्त्र है।

(ख) चार (मनुष्य) के वर्णों (जाति) के आधार पर विभाजन

चारों वर्णों के मनुष्यों को अनुगृहीत करने के लिए चार प्रकार के तन्त्रों का उपदेश हुआ है। ब्राह्मण जाति स्नान और शुचिता को पसन्द करने वाली है। वह तप और दुष्करचर्याओं द्वारा मुक्ति (मोक्ष) को मानती है और वर्ण को प्रधान मानती है। जप और होम (यज्ञादि) से मोक्ष प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों को अनुगृहीत करने के लिए बुद्ध ने क्रियातन्त्र की देशना दी है। **सुबाहुपरिपृच्छा (तन्त्र)** (तो० 805) में कहा है—

''शरीर में मिट्टी लेपकर, स्वच्छ महानदी में प्रवेश कर, यथेच्छ स्नान कर, बाहर निकल कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर जल से हस्तपाद का प्रक्षालन करने के बाद जानु को बाहर की ओर निकाल कर, मध्य में हाथ रखते हुए, उकडूं

बैठकर बिना किसी प्रकार का शब्द किये और पानी में बुलबुले उठाये स्नान करें। तीन बार जल पीकर, होंठ को दो बार साफ कर लें। दान्तों पर लगे (जल) को जिह्वा से स्पर्श कर (साफ कर लें) तथा छिक्का (छींक) हो तो मुँह भी धो लें। सद्यःप्रसूता नारी, कुमारी और वृद्धा ब्राह्मणी को मन्त्री (साधक) कभी भी स्पर्श न करे। सम्बुद्ध इनका चिन्तन नहीं करते। ये सौ लोगों से स्पर्शित होते हैं। (यदि) साधक का इनसे स्पर्श हो जाए तो पुनः स्नान, (जल) क्षेपण एवं (जल) पीकर (आचमन कर) पुनः जाप में प्रवेश करे''। इत्यादि।

वैश्य वर्ण घोर तपस्या और दुष्कर चर्याओं को करने में असमर्थ हैं। निन्दनीय कार्यों में प्रवेश करने वालों की निन्दा करते हुए आध्यात्मिक प्रज्ञोपाययोग तथा बाह्य दोनों कर्मों को करने वाले (वैश्यों) को चर्यातन्त्र का उपदेश दिया है। **वैरोचनाभिसम्बोधि (तन्त्र)** (तो० 494) में कहा है—

''आध्यात्मिक-बाह्ययोग के द्वारा मैंने चतुर्थ अंग को कहा है, वह भी आलम्बन वाले लौकिकों एवं अनुत्तर वालों के लिए है''।

क्षत्रिय दुष्करचर्याओं को करने में असमर्थ होते हैं। पाँच कामगुणों के सुख का भोग करने वाले (क्षत्रियों) को अनुगृहीत करने के लिए योगतन्त्र का उपदेश दिया है। **त्रैलोक्यविजयराजकल्पटीका** (तो० 2509) में कहा है—''जैसे संसार के महाराजा को इसमें कहे सभी कर्मद्वार आवश्यक होने के समान महाधर्मराज वैरोचन और वज्रपाणि के समस्त परिवार (परिषद) को भी इसी प्रकार देखना (समझना) चाहिए''।

शूद्र वर्ण शुचि अशुचि का ध्यान न रखते हुए सभी खाद्य (वस्तुओं) को खाता है और सभी दुष्कर्मों (कुकर्मों) को करता है। अल्प विकल्प वालों को निर्विकल्प द्वारा पाँच महामांस और पाँच अमृत आदि का भक्षण तथा निन्दनीय कर्मों को आभिप्रायिक शब्दों द्वारा सूचित करने वाले अनुत्तर योगतन्त्र का उपदेश दिया है। **समायोग (सर्वबुद्ध-डाकिनीसमायोगतन्त्र)** में कहा है—''इसी योग द्वारा सभी सिद्ध किये जाने से, हर प्रकार के अखाद्य और दुराचरण, दोष (के रूप) में परिवर्तित नहीं होंगे''।

यह गुरुजनों के वचनों में मिलता है तथा आचार्य अलङ्कलश द्वारा रचित **व्याख्यातन्त्र वज्रमाला** की टीका (तो० 1795) में भी स्पष्ट रूप से उद्धृत है।

(ग) चार प्रकार के त्याज्य क्लेशों के आधार पर विभाजन

प्रदीपोद्योतन में कहा है—''यहाँ उत्तम और मध्यम मोह जातियों (कुलों) के आशय से क्रियातन्त्र का उपदेश हुआ है। हीन मोह कुलों के लिए चर्यातन्त्र का उपदेश दिया है। हीन और मध्यम राग, द्वेष और मोह कुलों के लिए योगतन्त्र कहा है। अधिक (उत्तम) राग, द्वेष और मोह जातियों के लिए अनुत्तरयोगतन्त्र तथा अत्यधिक (अत्युत्तम) राग, द्वेष और मोह जातियों के लिए योगिनीतन्त्र का उपदेश दिया है''।

(घ) चार प्रकार के तीक्ष्ण-मन्द आदि इन्द्रिय वाले पुद्गलों के आधार पर विभाजन

(डाकिनी) वज्रपञ्जर (तो० 419) में कहा है—''मन्द बुद्धि (इन्द्रिय) वालों के लिए क्रियातन्त्र, उससे उच्च इन्द्रिय वालों के लिए चर्यातन्त्र, तीक्ष्ण (श्रेष्ठ इन्द्रिय) सत्त्वों (विनेय जनों) के लिए श्रेष्ठ योगतन्त्र और उससे उच्च (इन्द्रिय वाले विनेयजनों) के लिए अनुत्तरयोगतन्त्र की देशना दी है''।

जो पुद्गल मन्द इन्द्रिय और हीन बुद्धि वाले हैं वे स्नान आदि बाह्य कर्मों में रुचि रखते हैं, उन (मन्द इन्द्रिय वालों) के लिए बाह्य पट में चित्रित (देव) काय आदि को देवरूप में आलम्बन कर शौच (शुचि=पवित्रता) आदि कार्यों को बतलाने वाला क्रियातन्त्र, उन (मन्दबुद्धि) से श्रेष्ठ पुद्गलों (जो) स्व तथा उससे (स्व के अतिरिक्त) बाह्य देवरूप में आलम्बन कर चर्या करने वालों के लिए चर्यातन्त्र, उनसे भी तीक्ष्ण इन्द्रिय (बुद्धि) वाले पुद्गलों जो स्व और ज्ञान देवता का एकरस (अभिन्न) आलम्बन कर समाधि का ही प्रधान रूप से चर्या करने वाले हैं, उनके लिए योगतन्त्र और उनसे भी श्रेष्ठ (अति) तीक्ष्ण इन्द्रिय (बुद्धि) वाले, विशिष्ट तथा अनुत्तरसमाधि की चर्या करने वालों के लिए अनुत्तरयोगतन्त्र कहा है।

(ङ) चार प्रकार की हेत्ववस्थाओं की वासना के आधार पर विभाजन

लघुकालचक्रतन्त्र में कहा है—

प्रज्ञातन्त्रं हि पूर्वात् पुनरपरमुखादेव योगानुविद्धं
सव्यास्याद् योगतन्त्रं गदति जिनपतिर्वामवक्त्रात् क्रियाद्यम् । (5.48)

(जिनपति ने पूर्व (अग्र) मुख से प्रज्ञातन्त्र, पुनः पश्चिम मुख से योगानुविद्ध (अनुत्तरयोग), दक्षिण मुख से योगतन्त्र तथा वाम मुख से क्रियादि तन्त्र को कहा है।)

वाम मुख से निद्रा से जाग्रत् (अवस्था) की वासना के वश से स्थूल बाह्य विषयों में अभिनिवेश वालों के लिए क्रिया एवं चर्यातन्त्र, दक्षिण मुख से स्वप्न (अवस्था) की वासना के वश से चित्ताभास मात्र में अभिनिवेश करने वालों के लिए योगतन्त्र, पूर्व मुख से सुषुप्ति (अवस्था) की वासना के वश से सभी बाह्य विकल्प अस्त (समाप्त) कर निर्विकल्प में अभिनिवेश रखने वालों के लिए मातृ योगतन्त्र (प्रज्ञातन्त्र) और पृष्ठ मुख से तुरीय (अवस्था) की वासना के वश से सुख (परम सुख) में अभिनिवेश करने वालों के लिए योगानुविद्ध (अनुत्तरयोगतन्त्र) की देशना दी है।

(च) चार सामान्य प्रहराभिसन्धियों एवं युगों के आधार पर विभाजन

यह भी दो प्रकार के हैं—प्रथम चार प्रहराभिसन्धियों के भेद से तथा दूसरा चार युगों (काल) के भेद से।

(1) चार प्रहराभिसन्धियों के आधार पर विभाजन

रात-दिन की चार प्रहराभिसन्धियों की शुद्धि से तन्त्र चार (प्रकार) के होते हैं। **विमलप्रभा** में कहा है—"इह प्रथमप्रहराभिसन्धौ हसिततन्त्रम्, तृतीयप्रहराभिसन्धौ ईक्षण-तन्त्रम्, पञ्चमप्रहराभिसन्धौ स्तनस्पर्शतन्त्रम्, सप्तमप्रहराभिसन्धौ पाणिग्रहणतन्त्रम् एवं चतुर्धातन्त्रम्" (वि० प्र०, तृतीय, पृ० 32)। (यहाँ प्रथम प्रहर की अभिसन्धि में हासतन्त्र (क्रियातन्त्र), तीसरे प्रहर की अभिसन्धि में ईक्षण तन्त्र (चर्यातन्त्र), पाँचवें प्रहर की अभिसन्धि में स्तनस्पर्शतन्त्र (योगतन्त्र) और सातवें प्रहर की अभिसन्धि में पाणिग्रहणतन्त्र (अनुत्तरयोगतन्त्र)। इस प्रकार तन्त्र चार प्रकार के हैं।)

(2) चार युगों (काल) के आधार पर विभाजन

कृष्णपाद विरचित **गुह्यतत्त्वप्रकाश** (तो० 1450) में कहा है—"युग के चार भेद होने से तन्त्र के भी चार भेद हैं"। इस प्रकार कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युग होने के कारण तन्त्र (भी) क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तर भेद से चार में विभाजित किया गया है।

[क्रमशः]

•

श्रीमत्कृष्णवज्रपादकृतस्य

दोहाकोषस्य

पण्डित-अमृतवज्रप्रणीता टीका

DOHĀKOṢA

of

Kṛṣṇavajrapāda

with

Commentary by Paṇḍita Amṛtavajra

सम्पादन में प्रयुक्त आदर्श प्रतियाँ

श्री कृष्णवज्रपाद का दोहाकोष अन्य दोहाकोषों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस पर मेखला नामक संस्कृत टीका भी कलकत्ता से प्रकाशित है। इधर हमें डॉ० ठाकुरसेन नेगी के व्यक्तिगत संग्रह से अमृतवज्र कृत विस्तृत टीका प्राप्त हुई है, जिसे उन्होंने नेपाल के श्रीमनवज्र वज्राचार्य के संग्रह से प्रतिलिपि किया है। बाद में हमें राष्ट्रीय संग्रहालय से भी इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है, किन्तु उसमें दो पत्र नहीं हैं।

टीकाकार के समक्ष जो मातृका उपलब्ध थी और जिसके आधार पर उन्होंने टीका की है, हमने उसी मूलपाठ को ग्रहण किया है अन्य संस्करणों के पाठ-भेद टिप्पणी में दे दिये हैं। इसके पाठ मिलाने में निम्नलिखित संस्करणों का उपयोग किया गया है—

क. गुह्यवज्रविलासिनीसाधन नेपाल की प्रति, रील न० ई० 1484/7, पत्र सं० 44, अपूर्ण।

ख. टोक्यो यूनिवर्सिटी जापान से प्राप्त जीरॉक्स कॉपी, मैन्यु० नं० 340-II, पत्र 15

ग. मुद्रित बौद्धगान ओ दोहा (म० म० हरप्रसाद शास्त्री संस्करण)।

घ. मुद्रित (प्रबोधचन्द्र बागची संस्करण)।

ङ. मुद्रित एच० सी० भायाणी द्वारा सम्पादित संस्करण।

भो० Peking No. 4919.

श्रीमत्कृष्णवज्रपादकृतस्य

दोहाकोषस्य

पण्डित-अमृतवज्रप्रणीता टीका

विमलमन्त्रजलाप्लावितसंसारसागरपङ्कसिञ्चितानि ।
जयन्तु जगदर्थे मधुयुक्तानि कृष्णपादवचनपुष्पाणि ।।

विदुषाऽमृतवज्रेण सच्छिष्याध्येषणावशात् ।
चर्यापादकृताः शब्दा विभज्यन्ते पृथक् पृथक् ।।

नमः श्रीवज्रसत्त्वाय।

अत्र लौकिकमिथ्याज्ञानत्वेन "वयं तत्त्वविदः" इत्यहङ्कारेण "तथतां जानीमः" इति मानेन प्रसिद्धा गर्वात् तत्त्वप्रवीणमात्मानं मन्यमानाः 'वयं तत्त्वविदः' इति गर्वं समुद्व-हन्ति। तानवलोक्य करुणाभारस्तिमितहृदयस्तथान्तःस्फेटनाय यथाभूतमन्त्रमितितत्त्वदेशनां सर्वजनसाधारणार्थं प्राकृतभाषयाऽऽ**चार्यचर्यावज्र** आह—

लोअह[1] गव्व समुव्वहइ हउँ परमत्थ[2] पवीण[3] ।
कोड़िह[4] मज्झँ एक्कु जइ होइ णिरञ्जण लीण ।। 1।।

लोअह गव्व समुव्वहइ इत्यादि। लोको गर्वं समुद्वहति। कोऽसौ गर्वः। आह—**हउं परमत्थ पवीण** इति। एतच्च यावत्सम्भवमिति न प्रयुज्येतेतिप्रतिपादनार्थमाह-**कोडिह मज्झमि**त्यादि योगिकोटीनां मध्ये एको यदि भवति। निर्गता अञ्जना विरागादिक्लेशा अस्मिन्निति निरञ्जनः सहजकायः। तत्र लीनो निमग्नमना निरञ्जनलीनो योगीन्द्रः स च मादृश इति भावः।। 1।।

---

1. लोउ हु गव्वु - ङ. ।
2. पवीणु - ङ. ।
3. परमत्थे - ग.घ. ।
4. कोडिहे - ङ. ।

वितथज्ञानगर्विताना‌क्षिप्य लौकिकसत्यज्ञानेन परमार्थसत्यज्ञानेनाभिमानिनः पण्डिता-नधिकृत्य आह—

आगम-वेअ-पुराणें पण्डिआ माण[1] वहन्ति ।
पक्क सिरिफले अलिअ जिम[2] वाहेरिअ भमन्ति ।। 2 ।।

आगम वेअ इत्यादि। आगमादिज्ञानेन पण्डिता मानं परमार्थसत्यज्ञानेनाभिमानं वहन्ति। एवंभूताः सन्तः कस्मिन् क इव किं कुर्वत इत्याह—**पक्कसिरिफले** इत्यादि। पक्व-श्रीफले **अलयो** भ्रमराः। **जिम** यथा **बाह्यतो** हि **भ्रमन्ति**। तथा बहिर्मन्त्रमुद्रादिव्यग्राभिनि-विष्टदृष्टित्वाद् गम्भीरतत्त्वामृतं न विदन्तीत्यर्थः। तथा चोक्तं **चतुर्देवीपरिपृच्छायोगतन्त्रे**—

चतुरशीतिसहस्राणि धर्मस्कन्धे महामुने ।
तत्त्वं वै ये न जानन्ति सर्वे ते निष्फलाय वै ।।

यद्येवं तर्हि कथं प्रपञ्चाकारः साक्षात्क्रियत इति चेत्, उच्यते—प्रपञ्चाकारोऽपि स्कन्धधात्वायतनादित एव निष्प्रपञ्चात् सहजज्ञानाज्जायते। तज्जनित एव प्रपञ्चाकारः तत्प्रतिपत्तिनिमित्तम्।। तथा **चोक्तम्**—"प्रपञ्चैर्निष्प्रपञ्चायते" इति।। 2।।

तस्मादेवंरूपस्त्रीपुरुषनपुंसकाकारसहजकायाद् यथा जगदुदयते तथा दर्शयन्नाह—

बोहिचिअ[3] रअभूसिअ[4] अक्खोहेहिं सिट्ठओ[5] ।
पोक्खर वीअ[6] सहाव सुअ णिअ-देहहि दिट्ठओ ।। 3 ।।

बोहिचिअ इत्यादि। बोधिचित्तरजोभूषितम्। **अक्षोभ्येन शिलष्टमि**ति। शून्यातिशून्य-महाशून्यमिति। आलोकालोकाभासालोकोपलब्धानि। चित्तचैतसिकाविद्याः। रजनीदिवा-सन्ध्याः। निर्माणसम्भोगधर्मकायाः। कायवाक्चित्तानि, [जल?]वाष्पविबन्धकाः। आवाहन-विसर्जनधारणानि। ॐ आः हूँ इत्यक्षराणि। अधऊर्द्धमर्मोद्घाटनानि द्वाराणि। आत्मतत्त्व-

1. माणु - ङ. ।
2. जिमु - क. ख., जिवं वहिरे - घ. ।
3. चित्तु - ङ. ।
4. मिउ - ङ. ।
5. सिट्ठउं - ङ. ।
6. विअ - घ. ङ. ।

मन्त्रतत्त्वमण्डलतत्त्वानि। सत्त्वरजस्तमांसि। चन्द्रसूर्यराहवः। उत्पत्तिस्थितिप्रलयाः। इत्येवमादीनि। बोधिचित्तरजोऽक्षोभ्यशब्देनोच्यते। कुत्रैतद् दृष्टमित्याह—**पोक्खर वीअ** इत्यादि। पुष्करं शरीरकमलं तस्य बीजस्वभावं शुद्धनिर्मलं प्रभास्वरत्वात्। स एव सहज-कायः। क्व एतद्दृष्टमवगतम्। अयमर्थः। कायवाक्चित्तराजो भगवान् सर्वशून्यधातौ स्थितवान्। जगत् एवंकाररूप इति। तथा चोक्त**मादिबुद्धतन्त्रे**—

कायो द्विबिन्दुः शुक्रञ्च वाग्विसर्गो रजो रविः ।
राहुः कालाग्निरूपोऽयमेवंकारः सकलजगदेकबीजम् ।। इति।

अत एवाह—

डाकिनीचक्रमुत्पद्यते तिष्ठति लीयते प्रशाम्यति ।
तस्मादेवंकारादनेकाकारं विश्वमुदयते ।।

नत्वेकस्मिन्मृत्पिण्डे एकमेव मृत्पिण्डपरिणतघटलक्षणं कार्यमुत्पद्यते। तत्कथमेक-स्मादनेकरूपमनेकसंस्थानमने[क]देशस्तथापि अनवरतमपर्यन्तं जगदुत्पद्यते? उच्यते, नैव दोषः—

उपाध्यायाद्यथा विद्या दीपाद्दीपो यथा भवेत् ।
मुद्राया प्रतिमुद्रा च दर्पणे मुखतो मुखम् ।।

रवात् प्रतिरवोत्पत्तिः सूर्यकान्ते यथाऽनलः ।
अर्क्को नार्कं विना जातो जिह्वाश्रावोऽम्लभक्षणात्।।

न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यां नाप्यहेतुतः ।
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावाः क्वचन केचन ।।

(मध्यमकशास्त्र 1.3)

पितुर्मातुः सितं रक्तं प्राणापानौ द्वयं तथा ।
चित्तवज्रसमायुक्तं देहस्योत्पत्तिकारणम् ।।

अमिताभश्च रत्नधृक् प्राणापानौ यथाक्रमम् ।
कायवाक्चित्तरागाणि विचित्त(त्रं) चित्तवज्रिणः ।।

शुक्रादुत्पद्यते चन्द्रो रक्तात्सूर्यसमुद्भवः ।
प्राणतो राहुनिष्पत्तिः कालाग्नेरप्यपानतः ।।

शुक्रतो नाडिकोत्पत्तिः शुक्रादस्थिसमुद्भवः ।
रजसो रक्तसंभूती रक्तान्मांससमुद्भवः ।।

मांसाच्च चर्मणो जातिर्मज्जामज्जास्थितो भवेत् ।
चन्द्रतस्तोयनिष्पत्ती रक्तमग्नेर्निष्पत्तितः ।।

राहुतः प्राणनिष्पत्तिरपानस्याग्नितः स्मृतः ।
शुक्रेणोत्पादिता जिह्वा लम्बिका सर्वदेहिनाम् ।।

रजसोत्पादितं नेत्रं वामं चैव च दक्षिणम् ।
प्राणेनोत्पादितं नूनं घ्राणरन्ध्रद्वयं तथा ।।

शून्येनैव च संजातं श्रोत्ररन्ध्रद्वयं तथा ।
अपानेनैव संजातमधः श्रोत्रद्वयं तथा ।।

राहुणोत्पादितं भूयस्तनरन्ध्रद्वयं तथा ।
अपानेनाण्डयुग्मं स्यादेवञ्च तत्र संभवः ।।

एवमनेन क्रमेण सरसिजज[1]मुत्पद्यते ।। 3 ।।

ततश्च तदुत्पादनसामग्रीं संवृतिपरमार्थक्रमेण दर्शयन्नाह—

गअण णीर अमिआह पाँक मूल-वज्ज भाविअइ ।
अवधूइ-किअ मूलणाल हंकारो वि जाअइ ।। 4 ।।

गअण णीरेत्यादि। गगनमक्षोभ्यः स एव नीरत्वेन निरूपितोऽतिशुद्धत्वात्। **उक्तञ्च**-आकाशममृतबिन्दुरिति। **अमिआह पाँक** इति। अमिताभो बोधिचित्तं रजोभूषितमिति बोद्धव्यम्। तदेव पङ्कम्। किं कृत्वा **मूलं** प्रधानकारणमिति। **विभावितं** तदेव महासुखम्। अयमर्थः—अल्पपदमपि बीजं सलिलपङ्कमिलितं सदङ्कुरनालादिकं जनयति, तथेदमपि

1. शरीरमसिजं - क, सरसिजजं पद्मोद्भवमित्यर्थः ।

धर्मधातुबीजमाकाशसलिलं बोधिचित्तनिमित्तं भवरूपं भगवन्तं तमनाहतं कमलं कुसुमरूपं नालपत्रदण्डक्रमेण निष्पादयति। तदेवमाह—[1]**अवधूइ किअ मूलणाल** इत्यादि। अवं पापं धूतं ध्वस्तं प्रभास्वररूपत्वात्, अनयेत्य**वधूती** प्रथमं वरा। तथा च**आदिबुद्धतन्त्रे**—

आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकल्पिता। इति।

अवधूत्यैव कृतं मूलं प्रधाननालं यस्य स अवधूतीमूलनालः। कोऽसावित्याद्यहङ्कार इति परदर्शनाभिधानं हंसबीजम्। स एवानाहतः। क्ष(ह)परः क्ष(ह)कारान्तः। ऊष्मचतुर्थः। वज्रानङ्गाक्षरः। ह्रस्वदीर्घप्लुतसमाहाररूपाः सर्वे सुखैकबीजं संपूर्णचन्द्रमण्डलस्थम् इति। तथा च **श्रीसंपुटे**—

स्वरव्यञ्जनसंभूतं द्वात्रिंशद्बोधिमानसम् ।
पद्ममध्यगतं यत्तच्चन्द्रमण्डलमुच्यते ।।

मस्तिष्कं तु शिरोमध्ये स्थितं यत्तदुदाहृतम् ।
तस्य मध्ये तु हंकारो बिन्दुरूपो ह्यनाहतः ।।

तन्मूलं सर्वसत्त्वानां स्थिराणां च चलात्मनाम् ।
स्थितं तद्बीजरूपेण व्यक्तमव्यक्तरूपतः ।।

सर्वेषां देहिनां रूपं तस्मादुत्पन्नमादितः ।
स्रवत्यमृतरूपेण व्यवस्थितमहर्निशम् ।।

तेनैव भिद्यते नादो वह्निसंतोषकारिणा ।
संपूर्णमण्डलं तेन भवत्येव न संशयः ।।

तदेव मण्डमित्युक्तं वस्तूनां सारमुत्तमम् ।
तद् गृह्णाति लातीति शरीरं मण्डलं मतम् ।।

(संपुटोद्भवतन्त्रे, वसन्ततिलके च 8.9-14)

---

1. 'अव....इत्यादि' नास्ति - भो. ।

वि जाइअ इति। वि शब्दोऽत्र प्राकृतवा[क्या]लंकारे। **जाइअ** इति जातः। उक्तलक्षणो हंकारः।। 4।।

ननु अवधूती चेन्मूलनालीकृता षण्डमृणालपत्राणि कानीत्याह—

ललणा रसणा [1]वेति श(ष)ण्ड ठिअ च वि पासे ।
[2]पत्त-चउक्कम चउ-मुणाल ठिअ[3] महासुह वासे ।। 5।।

ललनाशब्देनालिः प्रज्ञा चन्द्रो विधीयते। तस्य वामनासापुटस्वभावस्तेन प्राणवायु-प्रवाहिणी ललना स्थिता। रसनाशब्देन कालिरूपोपायः सूर्योऽभिधीयते। तस्य दक्षिण-नासापुटस्वभावेन प्राणवायुप्रवाहिणी रसना स्थिता। सृष्टिक्रमेण विज्ञान-संस्कार-संज्ञा-वेदना-रूपस्वरूपाणि पञ्चमण्डलानि ललनायाः। संहारक्रमेण पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाश-स्वभावानि रसनायाः। एवं द्वादशलग्नपरिवर्तनविषमसमप्रवाहे तु त्रिंशन्मण्डलभोगिनी ललनारसना। **ललना-रसना वेति षण्ड ठिअ** इति। अत एव द्वे षण्डे स्थिते।

ललना प्रज्ञास्वभावेन रसनोपायसंस्थिता ।
अवधूती मध्यदेशे तु ग्राह्यग्राहकवर्जिता ।। इति।।

यत्तदुक्तमवेति। चतुःशून्यरूपं पत्रचतुष्कम्। **चउ मुणाले**ति। चतुर्नाडीस्वभावं चतुर्मृणालस्थितम्। कुत्रेत्याह—**महासुखावासे** चतुरानन्दरूपं चतुःशून्यात्मकं महासुखा-वासम्। वसत्यस्मिन्निति महासुखावासम् ऊष्णीषकमलम्, तत्र सर्वशून्यालयम्। डाक-डाकिनीजालमेलापकम्, जालन्धराभिधानमेरुगिरिशिखर इत्यर्थः ।। 5।।

एवंकार [4]बीअ लइअ [5]कुसुमिअ-अरविन्दए ।
महुअर-रूअ[6] सुरअ-वीर जिंघइ[7] मअरन्दए ।। 6।।

---

1. रविससि तुड़िअ वेण्ण : ख.ग.घ., तुडिआ विण्णि - ङ ।
2. पत्तोचउट्ठ - ग.घ., चउट्ठउ - ङ ।
3. ठिअउ - ङ ।
4. वीउ - ङ ।
5. कुसुमिअउ अरविंदउ - ङ ।
6. अरु एअउ - ङ ।
7. जिग्घइ मअरंदउ - ङ ।

एवंकार वीअ लइअ इत्यादि। एवमिति उक्तलक्षणमेवंकारबीजं गृहीत्वा तद्बीजं गर्भभूत्वा **कुसुमितमनाहतारविन्दमि**ति। अयमर्थः। येन बीजेन यद्वृक्षादिकं निष्पद्यते तस्य वृक्षस्य कुसुममपि ततः सद्बीजगर्भमेवेति। अत्रान्यैवंकारनिष्पन्नस्य पद्मस्य एवंकारगर्भमेव कुसुममिति। **महुअर रूअ** इत्यादि। मधुकरश्चित्तवज्रस्तस्य रूपं स्वरूपं जिघ्रति तेन। **सुरअ वीर** इति। प्रज्ञोपाययोर्द्वन्द्वयोगः सुरतम्। तत्र विच्छिन्नमहारागरूपेण विरागदलनाद्वीरः। स एव भगवान्ना(नना)हतः **जिंघइ** इति जिघ्रति। **मकरन्दं** पुष्परसम्। सुरतवीरतयाऽच्युतमहाराग-सुखमनुभवतीत्यर्थः। एतादृशो भगवानेवंकाररूपः ।।6।।

कथं सास्रवपञ्चमहाभूतात्मको जातः? इत्याशङ्क्याह—

पञ्च महाभूआ वीअ लइअ सामग्गीए जइअ[1] ।
कठिण पूहवि अव[2] तेअ गंधवह गअण सञ्जइअ[3] ।।7।।

पञ्च महाभूआ वीअ लइअ इत्यादि। महाभूतं पृथिव्यादिपञ्चकम्। बीजमेवंकारं गृहीत्वा **सामग्र्या** बोलकक्कोलयोगेन **जातमु**त्पन्नम्। तदेव दर्शयन्नाह—**कठिन पूहवि** इत्यादि—पृथ्वीधातोः कक्खटत्वात्कठिना पृथ्वी। द्रवत्वाद[प्]धातुः। उष्णत्वात्तेजोधातुः। गमनत्वाद्वायुधातुः। सुखरूपत्वादाकाशधातुः ।।7।।

गअण-समीरण-सुहवासे[4] पञ्चेहिं परिपूण्णए ।
सअल सुरासुर एहु उअत्ति बढ़ [5]एहु सो सुण्णए ।।8।।

पञ्चेहिं परिपूण्णए इति। एतत्पञ्चभूतकैः परिपूर्णं मिलितं बोधिचित्तमित्यर्थः। तथा च **श्रीहेवज्रे**—

कस्माद् भौतिकस्कन्धः? भगवानाह—बोलकक्कोलयोगेन।

स्पर्शात्काठिन्यधर्मेण पृथिवी तत्र जायते ।
बोधिचित्तद्रवाकारादब्धातोश्च संभवः ।।

---

1. जइआ - ङ. ।
2. जल - ङ. ।
3. संजाआ - ङ. ।
4. सुह-समाहि - ङ. ।
5. एत्थु - ङ. ।

तेजो जायते घर्षणाद् गमनाद्वायुः प्रकीर्तितः ।
सौख्यमाकाशधातुश्च पञ्चभिः परिवेष्टितः ।। इति।

(हे० त० 1.10.38-40)

अत एवाह—**पञ्चेहिं परिपूण्णए** इति। एभिः पञ्चभिः परिपूर्णं मिलितम्। **सअल सुरासुर एहु उअत्ती**त्यादि। सकलमनुष्यामनुष्याणां सुरासुराणामुत्पत्तिकारणम्। एहु इति एतत्। अयमर्थः—

पृथिव्यादीनि चत्वारि तत्त्वानि शून्यचतुष्टयम् ।
अष्टौ पदार्था विज्ञेया विनाशोत्पत्तिहेतवः ।। इति।

प्रभास्वरान्महाशून्यं तस्माच्चोपायसंभवः ।
तस्मादुत्पद्यते प्रज्ञा तस्याः पवनसंभवः ।।

पवनादग्निसंभूतिरग्नेश्च जलसंभवः ।
जलाज्जायते पृथ्वी सत्त्वानामेष संभवः ।।

भूधातुर्लीयते तोये तोयस्तेजसि लीयते ।
तेजश्च सूक्ष्मधातौ च वायुश्चित्ते विलीयते ।।

चित्तश्चैतसिके लीयेदविद्यायां तु चैतसम् ।
सापि प्रभास्वरं गच्छेन्निरोधोऽयं भवत्रये ।। इति।

एतदेवाह—**वढ एहु सो सुण्ण ए** इत्यादि। एतद्यानबहिर्भूतत्वात्। वढ इत्यक्षरः संबोधनम्। हे मूढ मन्त्रनयतत्त्वाविद! एतदेव शून्यमिति। सर्वशून्यं प्रभास्वरम्, अतो नान्यच्छून्यं तत्त्वमस्तीत्यर्थः। एवं तेनैव तदुक्तम्—अयमेव भवनिर्वाणैकरूपमहासुखवज्रो भगवान् स्वयमेव शरीरसरसिजमभिनिर्माय तदानाहतकुसुमरसं चित्तमधुकररूपेणा-विच्छिन्नमपहरणे व्यवस्थित इति। तथा च **श्रीहेवज्रे**—

स्वयं कर्त्ता स्वयं हर्ता, स्वयं राजा, स्वयं प्रभुः। (हे० त० 1.8.47)

इत्येवंरूपं साध्यं निश्चित्याधुना साधनं विचिन्त्य तेन तावद्विषयोपभोगपरिहाणे विषये वासक्तेर्नास्यसाधनं श्रावकपारमितानययोरेव व्यवस्थितत्वात्। निर्व्याजसमस्तविषयासंगेनैव महारागाद्यभिसंबोधेर्दर्शित्वात्। विषयसुखलक्ष्मीरेवास्य साधनम्। तथा च **सरहपादाः**—

केचिद्विषयांस्त्यक्त्वा केचिद्विषयान्वाधिष्ठानं कृत्वा केचिद्विषयैरेव तु नरवृषभाः कुर्वते बोधिम्। **भगवानाह—**

येन तु येन तु बध्यते लोकस्तेन तु तेन तु बन्धनं मुञ्चेत् ।
लोको मुह्यति वेत्ति न तत्त्वं तत्त्वविवर्जितः सिद्धिं न लप्स्येत् ।।

(हे० त० 1.9.19)

रागेण बध्यते लोको रागेणैव विमुच्यते ।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थिकैः ।। (हे० त० 2.2.51)

यद्येवं सर्वप्राणिनो विषयासक्तास्तेऽपि तर्हि महारागाभिसंबोधिं लप्स्यन्ताम्। नैव हि विषयोपभोगमात्रेणैवाविच्छिन्नमहारागसुखं लभ्यत इतिक्रमः। किं तु तेनैव सोपायेन, निरुपायेन विषयाक्षररूपं बिनाऽऽभासत्रयस्यापरिज्ञानात् न महारागसुखस्य साक्षात्कारः। तथा च **ज्ञानवज्रसमुच्चयमहायोगतन्त्रे—**

''यो भगलिङ्ग एवासक्तस्तत्परायणः स न महारागसम्बोधिं लभते। यदा तु केवलं सौख्यमादायाधिमुक्तिमात्रेणादिकर्मिकभूमौ व्यवतिष्ठते पुनः शैक्षो भवति। यस्तु वज्रपद्म-समायोगसुखेन प्रकृत्याभासं सम्यग्गुणं लक्षणं जानाति स महारागसुखप्रविष्टो भवति।''

तथा च **श्रीहेवज्रे—**

येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ।। (हे० त० 2.2.50)

ननु सोपायमपि विषयसुखं निमित्तमेव, महासुखञ्च निर्निमित्तम्, तत्कथं तथा भवितुमर्हति? सनिमित्तसुखमेव सद्गुरूपदेशान्निर्निमित्तं भवति। तथा चाहुः **सरहपादाः—**

यदिदं संनिमित्तसुखं तदेव महतां निमित्तपरिहीणम् ।
ज्ञानस्वयम्भूरूपं महासुखं कल्पनाशून्यम् ।।

(चर्यागीतिकोष, पृ० 110)

तस्मात् सोपायविषयोपभोग एव महारागाभिसंबोधिसाधनमिति ।। 8।।

तदेवाह—

खिति जल जलण पवण गअण वि माणह[1] ।
मण्डलचक्क विसअबुद्धि [2]लइअ परिमाणह ।।9।।

खिति ज़ल जलणेत्यादि। खिति पार्थिवमण्डलं जलं जलमण्डलं जलणमग्निमण्डलं पवनं वायुमण्डलम्। गअणमाकाशमण्डलम्। एतानेव पञ्चसृष्टिसंहारक्रमेण चन्द्रसूर्यभेदेन रोच्यते। तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

आकाशाद्यं सदा वामे संहारः क्ष्मादि दक्षिणे । (सेकोद्देश-62)

श्रीसमाजोत्तरेऽपि—

पञ्चज्ञानमयं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकम् ।
निश्चार्य पद्मनासाग्रे पिण्डरूपेण कल्पयेत् ।।

पञ्चवर्णं महारत्नं प्राणायाममितिस्मृतम् ।
स्वमन्त्रहृदये ध्यात्वा प्राणं बिन्दुगतं न्यसेत् ।। इति ।।

(गु० स० 18.146-148)

अस्यापि प्रतिनिर्देशमाह—**वज्रज्वालनाग्निमहायोगतन्त्रे**—

नासाग्रे सर्षपं नाम प्राणायामस्य कल्पनात् ।
प्राणायामे स्थिताः पञ्चरश्मयो बुद्धभावतः ।।

(गुह्यसमाजप्रदीपोद्योतनटीका, पृ० 57)

तथा च **वज्रगर्भपादाः**—

"नासाद्वयरन्ध्रे वामदक्षिण आदौ वा यदा आकाशमण्डलं वहति तदा मध्ये वहति। यदा वायुमण्डलं वहति तदा नासावामपुटे स्पृशति। यदा तेजोमण्डलं तदा नासारन्ध्रं दक्षिणं स्पृशति। यदा तोयमण्डलं तदा ऊर्ध्वम्। यदा पृथ्वीमण्डलं वहति तदाधः स्पृशति। एतत् मण्डलचक्रम्।" **विसअ बुद्धि लइअ** इति। विषयो वज्राब्जयोगः। तस्मिन्सति या **बुद्धिः**

1. माणहो - ङ ।
2. लइआ परिमाणहो - ङ ।

सुखवित्तिः ज्ञानमुद्रा सा विषयबुद्धिः सुखः। सत्त्वाः **प्रतिपद्यन्ते**। तन्मण्डलचक्रम्। **परिमाणतः** सर्वतोभावेन यथा षष्ठज्ञानप्रतिष्ठकं भवति तदा जानीत प्रतिपदाद्वा।। ९।।

एतेन कीदृशं भवतीत्याह—

णित्तरङ्ग[1] सम सहज रूअ सअल-कलूस-विरहिए[2] ।
पाप-पुण्ण-रहि एक्कु[3] णत्थि काण्हु[4] फुड़े कहिए ।। 10।।

णित्तरङ्ग सम सहज-रूअ इति। आवाहनविसर्जनाभावान्निस्तरङ्गम्। कुम्भक-रूपस्यातिक्रान्तत्वात् समम्। यथाभूतैवङ्काररूपत्वात् सहजरूपम्। **सअल कलूस विरहिअ** इति। सकलकलुषैः सकलपापैर्विरागरूपैर्विरहितं मुक्तम्। तथा च **श्रीआदिबुद्धे—**

न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम् ।
अतोऽक्षरसुखे चित्तं वेशनीयं सदा नृप ।। इति।। (सेकोद्देश-135)

एवंभूते महासुखे सुखाभिमानो नास्तीत्याह—**पापपुण्णरहि एक्कु णत्थी**ति। पापं वैरागसुखम्। पुण्यमक्षरसुखम्। तत्रैकमपि नास्ति। तथा च **श्रीसंपुटे—**

रागश्चैव विरागश्च वर्जयित्वा पुण्य(घुणः)स्थितः । इति।

काण्हु फुड़े कहिए इति। स्फुटमेतच्च कृष्णेन च वज्रेण कथितम्। अन्यैः कथितं न स्फुटमित्यर्थः ।। 10।।

एतज्ज्ञानबहिर्मुखैरात्मयोगेनापि न ज्ञातव्यमिति दर्शयन्नाह—

[5]वहि णिक्कलिदे[6] कलिदे सुण्णासुण्ण पइट्ठ[7] ।
सुण्णासुण्ण वेण्णि मज्झें रे बढ़ किम्पि ण दिट्ठ[8] ।। 11।।

---

1. त्तरंगु समु - ङ. ।
2. विरहिंउ - ङ. ।
3. ए कुच्छ णाहि - ग. घ. ङ. ।
4. कण्हें फुडु कहियउं - ङ, फड़ - घ. ।
5. बहिरहिं - ङ. ।
6. लिअ कलिअ - ङ., लिआ कलिआ - ग. घ. ।
7. पइट्ठउ - ङ. ।
8. दिट्ठउं - ङ. ।

वहि णिक्कलिदे इत्यादि। बहिराकारा(र)चक्रं स्वधिया निष्क्रम्य कलिते शून्यत्वेनाकारं चक्रमागम्य, अशून्यञ्च स्वशरीरे कल्पितयोगादिकधिया प्रविश्य तदालम्बनो भूत्वा। **सुण्णासुण्ण वेण्णि मज्झें** इति। अनयोः शून्याशून्ययोर्मध्ये हे मूढ किमपि तत्त्वं न दृष्टं न ज्ञातमित्यर्थः ।। 11।।

एवञ्चेन्नास्त्येव तत्र किञ्चित्तत्त्वमित्याशङ्क्याह—

सहज[1] एक्कु परु अत्थि तहिं फुड़[2] काण्हु परिजाणइ ।
सत्थागम वहु पढ़इ सुणइ[3] वढ़ किम्पि ण जाणइ ।। 12।।

सहज एक्कु परु अत्थि तहिं इत्यादि। सहजमेव एवं परमस्ति। तच्च कृष्णवज्रः परं जानाति। **सत्थागम** इति। शास्त्राणि तर्कादीनि आगमाः क्रियाचर्यादयः। तान् बहुविधान् पठति शृणोति चिन्तयति अभ्यस्यति च किमपि न जानाति। तेषां तद्रूपाभावात्। निस्तरङ्गमन्त्रनयोपदेशवेत्ता मत्सदृशः परं जानातीत्यर्थः ।। 12।।

तमेवोपदेशं तथा तथा पदैर्व्यादिशन्नाह—

[4]अह ण गमइ ऊइ ण जाइ।
वेण्णि-रहिअ[5] तसु णिच्चल ठाइ ।
भणइ [6]कण्हु मण कहवि ण फुट्टइ।
णिच्चल[7] पवण घरिणि घरे वट्टइ ।। 13।।

अह ण गम इत्यादि। ऊर्ध्वञ्च यातीत्यनया वृत्त्या प्राणवायोः कायवाक्चित्तभेदेन चन्द्रार्कराहुतोयाग्निशून्यस्वजातिमार्गत्रयस्य निरोधः। एवमूर्ध्वाधः प्राणापानयोर्मार्गनिरोधात्। अधो गच्छतीत्यनया संवृत्या अपानवायोः कायवाक्चित्तभेदेन विण्मूत्रशुक्रावाहिभूवायुज्ञान-धातुस्वजातिमार्गत्रयस्य निरोधः।

1. सहजु एकु – ङ. ।
2. फुडु कण्हु – ङ. ।
3. पुणु – ङ. ।
4. अहो ण – ङ. ।
5. रहिउ सो – ङ. ।
6. कण्ह – ग. घ., मणु – ङ. ।
7. णिच्चलु – ङ. ।

पूर्वोपसूचितज्ञानबिम्बदर्शने सति ततो अधोवज्रजापविधिना प्राणायामो निरन्तर-मापद्यते। तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

दृष्टे बिम्बे ततः कुर्यात् प्राणायामं निरन्तरम् ।
ऊर्ध्वाधस्त्रिषु नाडीषु कायवाक्चित्तरोधनात् ।।

चन्द्रार्कराहुविण्मूत्रशुक्रमार्गप्रवाहिषु ।
तोयाग्निशून्यभूवायुज्ञानधातुस्वजातिषु ।।

चन्द्रसूर्यतमिन्यो या कायवाक्चित्तनाडिकाः ।
विण्मूत्रशुक्रवाहिन्यः प्राणेऽपाने क्रमेण ताः ।।

चन्द्रकाय उपायस्य प्रज्ञाया वाग्दिवाकरः ।
प्रज्ञाकायस्तु विण्नाडी प्रभोगे मूत्रवाहिनी ।।

तमिनी चित्तमुपायस्य प्रज्ञाया(:) शुक्रवाहिनी ।
ऊर्ध्वाधश्चित्तनाड्यौ द्वे तमिनीशुक्रवाहिन्यौ ।।

ऊर्ध्वाधः षट्कुलं ह्येतत् कायवाक्चित्तहेतवः ।
प्रज्ञोपायाङ्गभेदेन संस्थितं सर्वदेहिनाम् ।। इति।।

(सेकोद्देश ३५–४०)

एवं सति प्राणायामः कथं तिष्ठतीत्याह—**वेण्णि रहिअ तसु णिच्चल ठाइ** इत्यादि। द्वाभ्यां ऊर्ध्वाधः प्राणायामाभ्यां रहितं परिमुक्तं सत्तथारूपं निश्चलं तिष्ठति मध्यमोत्तमश्वास इति। तथा च **कुलिकायाम्**—

हेरुकः सहजानन्दो मध्यमश्वास उत्तमः ।
विण्मूत्रशुक्रमार्तण्डचतुर्नाडीसमन्वितम् ।।

उक्तञ्च **व्यक्तभावानुगततत्त्वसिद्धौ**—

स्वस्थानस्थः सहजपवनः कल्पनाजालमुक्तः
स्वान्तस्तोषं किमपि जनयत्येष शून्यस्वभावः ।

(व्यक्तभावानुगततत्त्वसिद्धि 6, पृ० 174)

एवं सति बोधिचित्तमहाऽच्युतं संप्रतिदर्शयन्नाह— **भणइ कण्हु मण कहवि ण फुट्टइ** इत्यादि। भणति कृष्णाचार्यः। मनोबोधिचित्तं कथमपि न फुट्टति न स्खलति। उभयगतिभंगेन कवलीकृतकालनाडीरूपत्वात्। अयमभिप्रायः न पततु शशधर बिन्दुर्नामा किमेवमिह साध्यमस्माकं किन्त्वनुभयगतिकरूपम् एतदन्तरमहासुखरूपं बोधिचित्तं कुत्र वर्तेत। इह **णिच्चल पवण धरणि घरे वट्टइ** इत्यादि। निश्चलपवनो मध्यमश्वासः स एव ज्ञानमुद्रारूपत्वात् गृहिणी तस्या गृहं सुखम् आकाशधातुरवधूती तत्र वसते निवसतीति। अयमभिप्रायः। वायुरिह गतिधर्माऽकाशधात्वाश्रयः। गत्यागतिविनिर्मुक्तमाकाशधातोर्नीयमानम्। अध्यारोहणेनालोकप्रतिबिम्बसहितेन विज्ञानत्रयेण सहजे लीयते। तेन तदात्मको भगवान् महासुखवज्रः तत्र निवसतीत्युच्यते। तथा च **अनुत्तरसन्धौ**—

आलोकालोकाभासौ च तथालोकोपलब्धिकम् ।
चित्तं त्रिविधमित्युक्तम् आधारस्तस्य कथ्यते ।।

वायुना सूक्ष्मरूपेण ज्ञानं संमिश्रतां गतम् ।
निःसृत्येन्द्रियमार्गेभ्यो विषयानवलम्बते ।।

आभासेन यदा युक्तो वायुर्वाहनतां गतः ।
तदा तत्प्रकृतीः सर्वा अस्तव्यस्ताः प्रवर्तते ।।

यत्र यत्र स्थितो वायुस्तां तां प्रकृतिमुद्वहेत् ।
यावत् समीरणोच्छ्वासो नाभासो निश्चलो भवेत् ।। 13 ।।

(पञ्चक्रम, अनुत्तरसन्धि 31-34, पृ० 46-47)

तदेव कथं सर्वजनसाधारणं भवतीत्याह—

वरगिरिकन्दरे गुहिर जगु तहि सअल[1] वितुट्टइ ।
विमल[2] सलिल तहि सोस जाइ जइ कालाग्नि पइट्टइ ।। 14 ।।

वरगिरि कन्दर इत्यादि। वरः श्रेष्ठो गिरिः कन्दरदण्डरूपात्मकः। तथा च **श्रीसंपुटे**—

स्थितः पादतले वायुर्भैरम्भो धनुराकृतिः ।
स्थितस्त्रिकटिदेशे तु त्रिकोणे ज्वलनस्तथा ।।

---

1. सअलु वि चिट्टइ - ङ. ।
2. विमल सलिलु सोसिज्जइ कालाग्गिइ - ङ. ।

वर्तुलाकाररूपो हि वरुणस्तूदरे स्थितः ।
हृदये पृथिवी चैव चतुरस्रा समन्ततः ।।
कंकालदण्डरूपो हि सुमेरुगिरिराट् तथा ।। इति ।।

(सम्पुटतन्त्रे षष्ठस्य तृतीयप्रकरणे)

तस्य कन्दरं कुहरम्। तदेव कायवाक्चित्तमनसामगोचरं तत्किं भवति। **जगु सअल वितुट्टइ** इत्यादि। जगत्सकल एव तत्र त्रुट्यति 'त्रस्यति' तदूर्ध्वं तच्छिखरपर्यन्तन्नातिसर्पति। द्वीन्द्रियकुन्दुरुसुखाभिमानेनास्थिरचित्तत्वादिति। ननु जगदस्यां त्रुट्यतीत्येतदङ्केन ज्ञायते। आह—**विमल सलिल तहि सोस जाइ जइ** इति। विमलविवृत्या सुखरूपेण सलिलं संवृत्या सुखद्रवाकारेण विमलग्रहसत्यज्ञानं बोधिचित्तं यच्छोषं यात्यधः पतति। बोधिचित्तं हि जगदात्मभूतं तस्मिन्नधः पतिते जगत्सर्वं त्रुट्यति म्रियते। तथा च **आदिबुद्धे**—

अधश्चन्द्रामृतं याति मरणे सर्वदेहिनाम् ।
ऊर्ध्वे सूर्यरजो राहुर्विज्ञानं भावलक्षणे ।। इति ।। (सेकोद्देश 86)

तत्र किं स्यादित्याह—**कालाग्नि पअ(इ)ट्टइ** इति। कालोऽग्निश्च्युतावस्था कृष्ण-प्रतिपत्प्रवेशलक्षणम्। मरणकाल इति। तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

च्युतिर्विरागसंभूतिर्विरागाद्दुःखसंभवः ।
दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान् मृत्युःप्रजायते ।।

मरणात्पुनर्भवस्तेषां जरामृत्युश्च्युतिः पुनः ।
एवं विरागसंभूतिः सत्त्वानां नान्यथा भवः ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन च्युतिरागं विवर्जिताः ।
येनाक्षरं सुखं याति योगी संसारबन्धनात् ।। 14 ।।

(सेकोद्देश 139-141)

कथमेतदच्युतं न भवतीत्याह—

एहु सो [1]दुद्धरमेरु धरणिधर [2]समविसम उत्तार ण पावइ ।
भणइ [3]कण्ह दुल्लक्ख दुरवगाह को मणे परिभावइ ।। 15 ।।

---

1. सुदुउद्धरु - ङ ।
2. समुविसमु उत्तारु - ङ ।
3. कण्हु - ङ, काण्ह - ग. घ. ।

एहु सो दुद्धरमेरु धरणिधर इत्यादि। दुःखेन षडङ्गयोगैः प्राणबन्धेन बोधिचित्तं ध्रियतेऽस्मिन्निति दुर्द्धरम्। धरणिधरः स एव मेरुवत्। तत्र समलग्नक्रमेण वहतीति समः सूर्यवाही दक्षिणमार्गः। विषमलग्नक्रमेण वहतीति विषमः चन्द्रवाही विषममार्गः। समविषमाभ्यामुभयमार्गयुक्तेन मनसा विज्ञानधातूनां परिणाम इति व्यवलोकयति। एवं न जानात्येवेत्यर्थः। एवंभूतमना तच्चेतं न जानाति। चन्द्रसूर्याभ्यां वहतीति समविषमसत्त्वानां विज्ञानधातुः। उत्तारं तद्दुर्लंघनं तच्छिखरं न प्राप्नोति। अतएव **भणइ कण्ह** इत्यादि। भणति कृष्णवज्रः। दुःखेन विरागदशावञ्चनेन ज्ञानचक्षुषा लक्षत इति दुर्ल्लक्षः सर्वशून्यत्वात्। सर्वाकारसमत्वात्। दुःखेनावगाहते अनुभूयत इति दुरवगाहः । तमेव तादृशं को मनसा परिभावयति ।। 15।।

कः पुनस्तं जानातीत्याह—

जो (यो) संवेअइ मण[1] रअण अहरह सहज[2] फरन्त ।
सो परु जाणइ धम्म-गइ अण्ण कि मुणइ कहन्त[3] ।। 16।।

यो संवेअ इत्यादि। यः सम्यक् कुलिशाब्जसंयोगेन मनोऽवलम्बनेन यथार्थं वेदयति। यथाभूतमननान्मनः, रतिमनुत्तरसुखं तनोतीति **रत्नं** मनोरत्नं बुद्धबिम्बम्। तथा च **श्रीसमाजे**—

भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत् ।
भावयेद्बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः ।। इति।।

(सेकोद्देश 146)

तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

बिम्बं शून्योद्भवं हेतुः फलमक्षरजं सुखम् । इति।

(सेकोद्देश 146)

अत एवाह—**अहरह सहज फरन्त** इति। अहरहः प्रतिसंजातसर्वशून्यात् परिस्फुटः गगनवत्। तथा च **नामसङ्गीत्याम्**—

---

1. मणु रअणु - ङ।
2. सहजु फुरन्तु - ङ।
3. कहं तु - ङ।

गगनोद्भवः स्वयंभूः प्रज्ञाज्ञानानलो महान् । इति ।

(नामसङ्गीति 6.20, पृ० 45)

तथा च **श्रीसमाजोत्तरे**—

सेवाकाले महोष्णीषं बिम्बं विभाव्य यत्नतः ।
उपसाधनकाले च बिम्बममृतकुण्डलीम् ।।

साधने देवताबिम्बं भावयेत् घातयेत् पुनः ।
महासाधनकाले तु बिम्बं बुद्धाधिपं चित्तम् ।। इति ।।

(गु० स० 18.173–175, से० टी०, पृ० 38)

एतदेवाह **कुलिकायाम्**—"सन्ध्याभाषान्तरेण उष्णीषं बिम्बं त्रैधातुकमशेषतः। आकाशे धर्मोदयं चित्तवज्रं प्रतिष्ठाप्य सेवाकाले प्रत्याहारेण भावयेत्। ध्यानात्स्थिरीकुर्यात्" इति। अत्र **भगवतः** प्रतिज्ञा—

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत् ।
यदि न स्यात् प्रत्ययस्तत्र तदा मे मृषा वचः ।।

अत्र प्रत्ययो धूमादिनिमित्तम्। य एवं क्रमेण मनोरमं रत्नबुद्धबिम्बं संवेदयति। **सो परु जाणइ** इति। स परं जानातीति धर्मस्य यथाभूतगतिमवबोधम्। **अण्ण कि मुणइ कहन्त** इति। अन्यः द्वीन्द्रियक्षरसुखाभिनिविष्टः। किं मन्यते जानाति। कथ्यमानमपि न च जानातीत्यर्थः। एतदेव प्रकारान्तरेणाह—वायुवाहनतया आभासत्रयरूपत्वात् षष्ठ्युत्तरप्रकृतिरूपेन्द्रियद्वारेण निश्चित्य विषयानवलम्बते ।। 16 ।।

[1]पहं वहन्ते णिअ मण वन्धण किअउ जेण ।
[2]तिहुअण सअल विफारिअ पुणु संहारिअ[3] तेण ।। 17 ।।

पहं वहन्ते इत्यादि। संसारपथं वहति मतिविज्ञानधातुः सहजकायो मनसीत्यनेनेति। षडङ्गप्रयोगेन चन्द्रसूर्यावनिरोधेन प्राणस्थिरीकरणं बन्धनम्, तत्कृतं येन योगीन्द्रेण। **तिहुअण**

---

1. पहहिं वहंतउ णिअअ वंधणे – ङ. ।
2. तिहुअणु सअलु विफारिअउ – ङ., विफारिआ – ग. घ. ।
3. संहारिउ – ङ. ।

सअल विफारिअ इति। त्रिभुवनं कायवाक्चित्तचक्रे सकलं प्रतिरोमकूपपर्यन्तं जाग्रदवस्थाया आनन्दादिभेदेन बोधिचित्तेन विस्फारित्वा। पुनरूर्ध्वगत्या तुर्यादिक्षयेण निष्यन्दादिभेदेन संहृतमवधूत्याम्। नादबिन्दुकलातीतं सर्वशून्यधातौ प्रवेशितवज्रधरत्वं साक्षात्कृतेन इत्यर्थः ।। 17 ।।

अतएवाह—

[1]काहिं तथागत लभए देवी कोह-गणहि ।
मण्डल-चक्कविमुक्क [2]अच्छउँ सहज-खणेहि ।। 18 ।।

काहिं तथागतेत्यादि। किं तथागतः लभ्यते देवीक्रोधगणैः। मण्डलचक्रविमुक्तास्तिष्ठामः सहजक्षणेनेत्यभिप्रायः स्कन्धायतनाद्यादिकायवाक्चित्तमण्डलदेवताश्चेन्महासुखोपदेशसमरसीभावं गताः। तर्हि तदेवं महामण्डलमते नान्यत् पृथक् मण्डलमस्ति। तथा च **श्रीगुह्येन्द्रतिलकतन्त्रे**—

सर्वाङ्गभावनाऽतीतं कल्पनाकल्पवर्जितम् ।
मात्राबिन्दुसमातीतमेतत्मण्डलमुत्तमम् ।। 18 ।।

एतदेव पुनर्मण्डलं यथाकृतमाह—

सहजे णिच्चल जेण किअ समरसें णिअमण-राअ[3] ।
सिद्धउ सो पुण तक्खणे णउ जरामरणह भाअ[4] ।। 19 ।।

सहजे निश्चल इत्यादि। सहजया निजभूतप्रज्ञया। निश्चलास्खलितरूपो येन कृतः **समरसेन** चतुरानन्दैकरसेन **निजमनोरागो** वज्रानङ्गः। **सिद्धउ सो पुण** इत्यादि। सिद्धो महामुद्रासिद्धिः स वज्रधरत्वं प्राप्तः। **तत्क्षणं** क्षणानेकतया।

उक्तं च **श्रीचक्रसंवरे (संवरोदयतन्त्रे)**—

स्वर्गमर्त्यं च पातालैरेकमूर्तिः भवेत्क्षणात् ।
तत्क्षणादेव बाध्यते स्वपरसंवित्तिवेदिनः ।। इति ।।
(संवरोदयतन्त्र 3.6)

1. कांइ तथागतु लबाए.......गणेहिं - ङ. ।
2. अच्छो.....खणेहिं - ङ. ।
3. राउ - ङ. ।
4. भाउ - ङ. ।

अतएव न जरामरणेभ्यो **बिभेतीति** ।। 19।।

महामुद्रारूपं दर्शयन्नाह—

[1]णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर
उअअ-अत्थमणरहिअ सुसार[2] ।
अइसो सो णिव्वाण[3] भणिज्जइ
जहिं मण[4] माणिस किम्पि न किज्जइ ।। 20।।

णिच्चलेत्यादि। **निश्चलम**च्युतत्वात्। **निर्विकल्प**मनुभवैकरसत्वेन, इदं तदिति विकल्पविरहात्। निर्विकारो रागविरागाभ्यां निर्गतत्वात्। सूर्याचन्द्रमसोर्निरोधात्। उदयास्तमनरहितम्। सुष्ठु शोभनं महासुखत्वात्। सारं प्रभास्वरत्वात्। **अइसो सो** इत्यादि। अतो निर्वाणं भण्यते निर्वाणशब्देनाभिलप्यते न तु स्वरूपत्वात्तन्निर्वाणम्, अप्रतिष्ठितनिर्वाणत्वात्। तत्किं विशिष्टमित्याह— **जहिं मण माणिस** इत्यादि। यत्र यावन्मनस्त्रिविधं चित्तस्य षष्ट्युत्तरशतप्रकृतयः। ताश्च बिन्दुश्च किमपि न क्रियते। एतादृशः संकल्पः किमपि न जायत इत्यर्थः ।। 20।।

अतएवाह—

एवंकार जे वुज्झिअ[5] ते वुज्झिअ सअल असेस ।
धम्म-करण्ड[6] होइ सोहु रे णिअ-[7]पहुरे धरु-वेस ।। 21।।

एवंकार इत्यादि। यस्तादृश एवंकारः बुद्धः प्रतीतः। सकल एवंकारैर्विश्वमशेषस्तस्यैवविश्वैकरूपत्वात्। किंभूतोऽसावित्याह—**धम्म करण्ड होइ** इति। धर्माणां स्कन्धधात्वायतनादीनाम्। करण्डकं स्थानम्। **सोहुरे** संबोधनम्। **णिअ पहुरे धरु वेस** इति। निजप्रभोश्चित्तवज्रस्य वेश आभरणं तेनालिङ्गितस्यैव तस्योदयत्वात् ।। 21।।

---

1. णिच्चलु.......अप्पु - ङ. ।
2. सुसारउ - ङ. ।
3. णिव्वाणु - ङ. ।
4. मणु - ङ ।
5. बुज्झिअउ.........सअलु असेसु - ङ. ।
6. करण्डहो सोहरे - ग. घ. ङ ।
7. पहुधर वेस - घ. ङ., पहुवारो वेस - ग. ।

पुनः साधनोद्देशमाह—

जइ पवण-गमण-[1]दुआरे दिढ ताला वि दिज्जइ,
जइ तसु घोरान्धारे[2] मण-[3]दिव हो किज्जइ ।
जिण रअण उअरें [4]जइसो वरु अम्वरु छुप्पइ,
भणइ काण्ह भव[5] भुञ्जते णिव्वाणो वि सिज्झइ ।। 22 ।।

जइ पवण गमण दुवार इत्यादि। पवनस्य गमनाय द्वारम्। अध ऊर्ध्वं **तत्र परिदृढमभेदं** अलु संपुटीकरणं चन्द्रसूर्यमग्निनिरोधः क्रियते। निष्पाद्यत इति कायबन्धः। **जइ तसु घोरान्धारे** इति। यदि तस्मिन् घोरान्धकारे कुम्भरूपा**स्फानकसमाधौ**। मनोऽनाहतनादौ धर्मेश्वर एव महासुखप्रकाशत्वाद्दीपः स धूमादिनिमित्तैः क्रियते प्रतिपाद्यते। तथा च **श्रीसमाजे**—

निरोधवज्रगते चित्ते निमित्तोद्ग्रह जायते ।इति। (गु० स० 11.41)

अनेन वाग्बन्धः। **जिण रयण** इत्यादि। जिनरत्नं स एवानाहतनादः। उपरिष्टाद्य-दाऽऽधानं षष्ठज्ञानमण्डलं बिन्दुः स्पृशति। तमालिङ्गयति। **उक्तञ्च**—"षष्ठवज्रमणौ पुंसां बुद्धानां शिरसि स्थितम्"। अनेन चित्तबन्धः। तथा च **श्रीसम्पुटे**—

अनिलानलतृप्त्यर्थं वज्रीबीजेन चोदयेत् ।
बिन्दुनादसमाक्रान्तं धारावर्ष इति स्मृतम् ।।

(सम्पुटतन्त्रे तृतीयस्य द्वितीयप्रकरणे)

उक्तञ्च—

नादबिन्दुसमायुक्तो यदा भवति सर्वथा ।
तथा फलमिति ख्यातं वदन्ति वरयोगिनः ।। इति।।

---

1. दुआरेहिं दिढुतालउ - ङ. ।
2. घोरंधारे - ङ. ।
3. दीवउ - ङ. ।
4. जइ.........घुप्पइ - नास्ति ग. ।
5. भवु भुंजंत हो - ङ., भवभुञ्जन्ते - घ. ।

एतेन किं स्यादित्याह—**भणइ कण्ह** इत्यादि। भणति कृष्णवज्रो। भव एव भुज्यमाने प्रज्ञासुख एवानुभूयमाने सति सर्वविरागदुःखेभ्यो निर्वृतत्वात्। निर्वाणं महामुद्रापदं सिध्यति साक्षाद्भवति। तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

मध्ये प्राणप्रवेशः सरविशशिगतेर्बन्धनं सव्यवामे
चित्तं मुद्राप्रसङ्गे परमसुखगतं वज्रसम्बोधनं च ।
अब्जे वज्रध्वनिर्वा स्वकरकमलोल्लालनं सौख्यहेतो-
र्बीजत्यागः ससौख्यो मरणभयहरः श्रीगुरोर्वक्त्रमेतत् ।। 22 ।।

(का० त० 5.121)

चित्तबन्धेनैव सर्वं सिध्यतीत्याशङ्क्य चित्तनिश्चलतामाह—

[1]जो एत्थु णिच्चल[2] किअउ मण सो धम्मक्खर पास ।
[3]पवणहो वज्झइ तक्खणे विसआ होन्ति णिरास ।। 23 ।।

ज़ो एत्थु णिच्चल इत्यादि। वज्राब्जयोगे योजयेत् षडङ्गादिप्रयोगैः। निश्चलीकृत्य चित्तम्। तत्कुत्र आह—**धम्मक्खरपास** इति। धर्माक्षराऽनाहतं नैरात्मबीजम्। तत्पार्श्व तस्मिन्नित्यर्थः। एतेन किं स्यादित्यत आह—**पवणहो वज्झइ** पवनोऽपि प्राणवायुरपि बध्यते तत्क्षणम्। अन्यत् किं भवतीत्याह—**विसआ होन्ति णिरास** इति। विषया रूपादयः। उपभुज्यमाना निरस्ता भवन्ति। संसारबन्धनं त्यजन्तीत्यर्थः ।। 23 ।।

ननु धर्माक्षरमेव कुत्र ज्ञातव्यमित्याह—

परमविरम जहिं वेण्णि[4] उएक्खइ,
तहिं धम्मक्खर मज्झे लक्खइ ।
अइस उएसे जइ फुड़[5] सिज्झइ,
पवण घरिणि तहिं णिच्चल वज्झइ ।। 24 ।।

---

1. जें - ङ. ।
2. णिच्चलु....मणु......घम्मक्खरु - ङ. ।
3. पवणु हि.....तक्खणेहिं - ङ. ।
4. वेणि उएक्ख - ग. ।
5. फुडु - ङ. ।

परमविरमेत्यादि। परमविरमौ चन्द्रसूर्यरागविरागौ। तत्र मध्ये उत्प्रेक्षध्वम्। तत्र धर्माक्षरं तदुक्तलक्षणं तयोर्मध्ये लक्षयेत्। **अइस उएस** इत्यादि। ईदृशेन मन्त्रनयोपदेशेन यदि स्फुटमेतत्सर्वं सिध्यति सम्पद्यते। तदा पवनगृहिणी-उक्तलक्षणा निश्चितं बध्यते। निश्चली-भवतीत्यर्थः ।। 24।।

नन्वेतस्मिन्प्राणबन्धे निश्चलीभूते सति तत्र धर्माक्षरं महासुखवज्रं किंरूपः कुत्र वसतीत्याह—

वर रअण गिरि-सिहर[1] उतुङ्ग मुणि सवरें जहिं किअ[2] वास ।
णउ सो लंघिअ[3] पञ्चाणणेहि करिवर दूरिअ आस[4] ।। 25।।

वर रअण सिहरेत्यादि। वररत्नगिरिः। स एव पूर्वोक्तमेरुः। तस्य शिखरं शृङ्गं कमलभवनानन्दरूपं सकलमहासुखाधारत्वात्। उत्तमाङ्गं महती स्थली। **सवरें जहिं किअ वास** इति। सवरेण तथारूपापन्नधर्माक्षरेण, ज्ञानवज्रेण भगवता यत्र कृतो वास इति। किं विशिष्ट इत्याह—**णौ (णउ) सो लंघिअ** इत्यादि। नौ लङ्घितानाक्रान्ता, पञ्चाननैः पञ्चमण्डलमुखैः षष्ठस्य ज्ञानमण्डलरूपत्वात्। **करिवर दूरिअ आसे**ति। करिवरः पशुः। चन्द्रसूर्यौ तयोर्दूरत उल्लङ्घना सा। उक्तञ्च—"**चन्द्रसूर्यौ महापशू**" इति। अयमभिप्रायः। चन्द्रसूर्यमण्डलवाहिण्य वाय्वारूढविज्ञानधातुत्वेन सर्वत्र सर्वदा सर्वतोभावेन स्थितोऽपि भगवान् महासुखवज्रो नाधिगम्यत इति। पञ्चमण्डलात्मकप्राणसिंहेन करिवरस्य चित्तगजेन्द्रस्य भूमिरिति ।। 25।।

तथापि कर्मजे देहे नियमेन कुत्र वसतीत्याह—

एहु सो गिरिवर[5] कहिअ मइँ एहु सो महासुह-ठाव[6] ।
एक्कु[7] रअणि सहजखण लब्भइ महासुह जाव[8] ।। 26।।

---

1. सिहरु - ङ ।
2. किउ वासु - ङ ।
3. लंघिउ - ङ ।
4. आसु - ङ ।
5. गिरिवरु - ङ ।
6. ठावुं - ङ ।
7. एक्का....खणु - ङ ।
8. जावं - ङ ।

एहु सो गिरिवर इत्यादि। मया कृष्णवज्रेण एतदेव गिरिवरं कथितं नान्येन कथितं मद्विधाः कथितुं समर्था इति भावः। **एहु सो महासुह ठाव** इति। विवृत्त्या एतदेव महासुखस्थानं पूर्वोक्ता स्थली। **एक्खु सो णियमहु** इत्यादि। अत्रैव तत्सहजक्षणं वज्रधरावस्था पर्यन्तमभ्यस्यताम्। अतएव **लब्भइ महासुह जाव** इति। यावत् त्रयोदश-भूमीश्वरवज्रधरपदं लभ्यते ।। 26।।

किंभूतोऽसौ वज्रधर इत्याशङ्क्याह—

[1]सब जगु काअ-वाअ-मण मिलि[2] विफुरइ तहिसो दूरे ।
सो वितक्क[3] भङ्गे महासुह णिव्वाण[4] एक्कु रे ।। 27।।

सबजगु इत्यादि। सर्वे ते वैरोचनादयस्तथागता रूपादिस्कन्धरूपेण जगदाकाराः। तेषां कायवाक्चित्तपृथिव्यादिधातुरूपिणो लोचनादिदेव्यस्ताभिर्मिलिताः। एकलोलीभूत-महारागाभिसंबोधिलक्ष्मीलक्षणः। वज्रधरशरीरं नीरक्षीरन्यायेन एभिः समरसीभूतमिति भावः। **विफुरइ** इति। तत्रैव वज्रधरशरीरे, तदेव कायवाक्चित्तादिकं जलतरङ्गन्यायेन विस्फुरति। अनेन त्रैधातुकं वज्रशरीरम् इत्यादि। एतदेव स्पष्टयन्नाह—**सो वितक्क** इत्यादि। एकैको महासुखराजको वज्रधरः नानाप्रकारेण प्रतिभासते ।। 27।।

देहनियमेन कुत्र वसतीत्याह—

एक्कु ण किज्जइ मन्त[5] ण तन्त, णिअ [6]घरिणी लइ केलि करन्त[7] ।
णिअ[8] घरे घरिणी जाव ण मज्जइ, ताव कि पञ्चवण्ण[9] विहरिज्जइ ।। 28।।

---

1. सब्बु - ङ ।
2. मिलेबि फुरत्तहो - ङ ।
3. एहु - (शा० वा०). एअ - ङ ।
4. णिव्वाणहि एकउ - ङ ।
5. मंतु ण तंतु - ङ ।
6. करंतु - ङ ।
7. घरणि - ग. ।
8. णिअघर - ग. ।
9. पञ्चवर्ण - ग., पंच वर्णे - ङ ।

एक्कु ण किज्जइ ण मन्त इत्यादि। एकमपि न क्रियते मन्त्रतन्त्रजापस्तन्त्रपाठः। केनैतदित्याह—**निजगृहेत्**यादि। **निजगृहिणी** ज्ञानमुद्रा स्वचित्ताभासा सद्गुरूपदेशेन गृहीत्वा **केलि** मनोनुकूलमुद्रायां सहजक्रीडां कुर्वन्ति योगिन इति। तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

चित्तस्याभासमात्रा स्वमनसि जनितादर्शबिम्बोपमा वै
योगीन्द्रैः सेवनीया सकलजिनसुतैः सेविता या च बुद्धैः ।
सा ज्ञानार्च्चिः प्रबुद्धा दहति सविषयान् मारवृन्दं समस्तम्
रागादींश्चापि काये दहति सममुखं योगिनां वर्षयोगात् ।। इति ।।

(का० त० 5.113)

एतस्यां भगवत्यामासक्तेन योगिना मन्त्रतन्त्रग्रहो न कर्तव्यः। इत्यस्यायमर्थः। सैव च मनसो बोधिचित्तस्य मननान्मन्त्रः। सैव च तत्त्रिकुम्भधारण इति।

धातुपाठाज्जिनकुम्भधृके(ते)न तु तत्र तदासक्तेन सर्वमेव क्रियत इति। तथा च **श्रीसमाजे**—

न मन्त्रजापो न तपो न होमो
न माण्डलेयं न च मण्डलं च ।
स मन्त्रजापः स तपः स होम-
स्तन्माण्डलेयं तन्मण्डलं च ।। इति।। (हे० त० 1.10.43)

णिअ घरे हि इति। सर्वशून्यताऽवधूतीस्थानं निजगृहम्। समहामुद्रातन्त्रगृहिणी सैव **न मज्जति** न लीयते। **तावत्किं पञ्चवर्णे**त्यादि। तावत्किं पञ्चवर्णैः पञ्चाकाराभिसंबोधिरनेकसत्त्वाशयभेदेनानेन भुजमुखवर्णसंस्थानैर्व्यवह्रियत इति। तथा च **(श्री)आदिबुद्धे**—

कर्ममुद्रासमापत्त्या ज्ञानमुद्रावलम्बनैः ।
महामुद्रैकयोगेन वृद्धिं याति तदक्षरम् ।। इति।। (सेकोद्देश 93)

ततः

सर्वतः पाणिपादाद्यं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः स्मृतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। (चक्रसंवर 50.26)

तस्या एव दिव्यमुद्राया महामुद्राफलसाधनोपदेशपदं नियमेन दर्शयेदिति ।। 28 ।।

पुनस्तदेवाह—

[1]एते जप-होमे मण्डलकम्मे,
[2]अणुदिण अच्छसि काहिउ[3] धम्मे ।
[4]ते विणु तरुणि णिरन्तर णेहें,
वोहि कि [5]लाभइ एण वि देहें ।। 29 ।।

एते जपहोमेत्यादि। एतेन बाह्यभूतेन होमेन जपेन मण्डलकर्मणानुदिनं तिष्ठसि बहिर्निबद्धमनसाढक्करिरूपेण निष्फल इत्यर्थः। कथमेतत्सर्वं निष्फलमित्याह—**ते विणु** इत्यादि। तेन विना सदैव रागमयत्वात्तरुणी सैव दिव्यमुद्रा। तस्या निरन्तरगमनावच्छिन्नं आनन्दादिक्रमेणानुरागेणोत्पादस्तेन स्नेहेन तरुणीनिस्तरङ्गस्नेहेन। **वोहि कि लाभइ** इत्यादि। बोधिर्महामुद्रा सा किं तेन लभ्यते। पूर्वोक्त एवंकारो, देहेन बिना न लभ्यत इत्यर्थः॥ 29 ।।

जें बुज्झिअ[6] विरल सहजखण[7] काहिं वेअ-पुराण ।
तें तुड़िअ[8] विसअ-विअप्प जगु रे असेस परिमाण ।। 30 ।।

जें किअ[9] णिच्चल मण-रअण णिअ घरिणी लइ [10]एत्थ ।
[11]अइसो सो वाजिर[12] णाहु रे मयिं वुत्तो परमत्थ[13] ।। 31 ।।

जें बुज्झिअ इत्यादि। सुगमम्। **जें किअ णिच्चले**त्यादि। येन कृतं प्रचण्डचण्डाली-वह्निं द्रावयित्वा चालयितुमशक्यत्वान्निश्चलं मनोरत्नं बोधिचित्तम्। किं कृत्वेत्याह—**णिअ**

---

1. एसो - ग. घ., एअ - ङ ।
2. अणुदिणु - ङ ।
3. काइं अधम्में - ङ ।
4. तो - ग. घ., तई - ङ ।
5. लब्भइ -ग. घ. ङ ।
6. बूझिअ - ग., बुज्झिउ - ङ ।
7. खणु - ङ ।
8. तोड़िअ - ग., तुड़िअउ - ङ ।
9. किउ विच्चलु मण रअणु - ङ ।
10. एत्थो - ग., एत्थु - ङ ।
11. सोइ - घ., सो - ङ ।
12. वाजिरधरु - ङ ।
13. परमत्थो - ग., बुत्तउ परमत्थु - ङ ।

घरिणी लइ इत्यादि। निज गृहिणीं तामेव दिव्यमुद्रां तत्रवंकारमहासुखस्थाने। **अइसो सो वाजिर** इत्यादि। स एव वज्रधरो नाथः। कायवाक्चित्तप्रभुः। रे सम्बोधाक्षरम्। **वुत्तो परमत्थ** इति। उक्तो मया कृष्णवज्रेण परमार्थोऽकृत्रिमोऽयमर्थः। अत्र नान्योऽस्तीत्यर्थः ।। 30-31।।

एतदेव दृष्टान्तमाह—

[1]जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि[2] तिम घरिणी[3] लइ चित्त।
समरस[4] जाइ तक्खणे जइ पुणु ते[5] सम णित्त ।। 32।।

जिम लोण विलिज्जइ इत्यादि। यथा लवणं विलीयते **पानीयेन** तथा **गृहिणीं** ज्ञानरूपिणीं गृहीत्वा चित्तं बोधिचित्तं समरसत्वं याति। तथा च **श्रीहेवज्रे**—

शुक्राकारोभवेद् भगवान् तत्सुखं कामिनीसुखम्। इति।

(हि० त० 1.8.50)

तदुभेऽपि शुक्रसुखे आधाराधेयरूपे। सर्वशून्यस्वभावसुखे। समरसमेकलोलीभावं गच्छत इति तत्क्षणम्।

तथा च **श्रीआदिबुद्धे**—

आधाराधेयसंबन्धो यावदक्षरतां व्रजेत् ।
चित्तमक्षरताप्राप्तं नाधाराधेयलक्षणम् ।। इति।। (सेकोद्देश 144)

तथा च **संपुटे**—

नासापुटद्विरन्ध्रेणागतः सुकाल उच्यते ।
गतश्चैव दुष्कालः स्यात्तयोरेकः प्रकीर्तितः ।।

---

1. जिवं लोणु - ङ ।
2. पाणि अहिं - ङ ।
3. धरणी लइ चित्तु - ङ ।
4. समरसु जाइअ - ङ ।
5. तहे समु णित्तु - ङ ।

असहायो भवेदेकः कालस्त्वचिन्त्यतां गतः ।
प्राणायामविहीनस्तु प्रश्वासाश्वासलक्षणः ।।

गत्यागतिविनिर्मुक्त एकः समय उच्यते ।
न रागो न विरागश्च मध्यमा नोपलभ्यते ।।

रागेण च विरागेण द्वाभ्यामस्तमनाहतम् ।
घृते घृतं यथा क्षिप्तं मिश्रीभूतमनाविलम् ।।
तथा रागविरागाभ्यामेकः समरसक्षणः ।। इति ।।

जहि पुणुताहि णित्त इति। यदि पुनस्ताभ्यामन्योन्यं नित्यत्वमवच्छिन्नम्। यदा पुनरेतत्स्यादिति। अयमर्थः तथा तथा दर्शितोपायैः शुक्ररजो-रूपयोरन्योन्यमनवच्छिन्नम्। नान्यत्वे सति। शुक्रस्वभावश्चन्द्रस्वभावः सम्भोगकायः। रजःस्वभावः सूर्याभासनिर्माणकाय-श्चास्तंगते। सुखवर्तिरूपगृहिण्या सह। एतद्बोधिचित्तं उभययोगाभ्यां पिण्डीभूयोत्पत्तिप्रलयरूप-संसारमार्गमतिक्रम्य समरसीभवति निष्यन्दरूपः श्रीहेरुको भवति। तथा च **श्रीसम्पुटे**—

यदा कण्ठे महारागरूपेण चन्द्रमा स्थितो भवति ।
सम्भोगस्तु तदाख्यातो बुद्धानां काय उत्तमः ।
नासाग्रे सदा चासौ वज्राग्रे तु यदा स्थितः ।
अस्तंगतस्तु सम्भोगः कायोऽपि हि तदा भवेत् ।
भगमध्ये गतश्चासौ सर्षप इति विश्रुतः ।
सूर्यरूपसमाख्यातो निर्माणकाय उच्यते ।
बुद्धानां बोधिसत्त्वानां स्फरणं तेन जायते ।
पद्मनर्तेश्वरो राजा पद्मप्रभुरिति स्मृतः ।। इति ।।

(वसन्ततिलके 10.17-21)

श्रीकृष्णवज्रपादानां दोहाकोषस्य टीका समाप्ता।

कृतिरियं पण्डित अमृतवज्रस्य। ग्रन्थप्रमाणं संख्याः 400 । शुभम्।
लिखितं श्रीरूपराजेन स्वात्मप्रबोधनार्थम् ।।

•

རྩོམ་གྱི་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས།

བསྟོད་པ་ཁག་གཉིས། ༡ - ༨

རྡོ་རྗེ་ནག་པོ་ཆེན་པོའི་བསྟོད་པ་བརྒྱད་པ་དང་རྡོ་རྗེ་རྣལ་འབྱོར་ལ་བསྟོད་པ་སྙིང་པོའི་དོན་ཞེས་བྱ་བའི་བསྟོད་པ་འདི་གཉིས་པོ་ནེའུ་ཡོཀ་འཛམ་གླིང་ཆོས་ལུགས་ཁག་གི་མཐོ་རིམ་སློབ་གཉེར་ཁང་ནས་ཐོབ་པའི་བསྟོད་པ་སུམ་ཅུ་སོ་ལྔའི་ཕྱོགས་བཏུས་ལས་བླངས་པ་ཞིག་ཡིན།

མི་གནས་མྱང་འདས་ཀྱི་ཁམས་དང་ཆོས་འབྱུང་མངོན་བྱང་གི་སྦྱོར་བ། ༩ - ༡༨

དྷཱིཿའདོན་ཐེངས་སྔ་མ་རྣམས་སུ་སློབ་དཔོན་འཕགས་པ་ལྷས་མཛད་པའི་སྤྱོད་པ་བསྡུས་པའི་སྒྲོན་མའི་ལེའུ་དང་པོ་ནས་བདུན་པ་བར་གྱི་བསྡུས་དོན་ཧིན་སྐད་དུ་ཕབ་བསྒྱུར་བྱས་ཏེ་བཀོད་ཟིན། འདོན་ཐེངས་འདིར་གཞུང་འདི་ཉིད་ཀྱི་ལེའུ་བརྒྱད་པ་དང་དགུ་པ་གཉིས་ཀྱི་ཧིན་སྐད་དུ་ཕབ་བསྒྱུར་ཞུས་པ་བཀོད་ཡོད།

ནང་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་གི་ཕྱོགས་བཏུས། ༡༩ - ༢༢

ད་ཆ་འགྲེལ་པ་མེད་པའི་དབང་གིས་གཞུང་རྣམས་ལས་ནང་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་ཐོབ་པ་ནི་ཧ་ཅང་དཀོན་པོ་ཆགས་ཡོད། དུས་དེབ་འདོན་ཐེངས་འདིའི་ནང་དབང་མདོར་བསྟན་པའི་བརྗོད་བྱང་དང་། དབང་མདོར་བསྟན་པའི་དཀའ་འགྲེལ་དང་། ལས་དང་པོའི་སྒྲོན་མ་ཞེས་བྱ་བའི་གཞུང་རྣམས་ལས་ཕྱོགས་བཏུས་བྱས་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་བཀོད་ཡོད། ལས་དང་པོའི་སྒྲོན་མ་ནི་ཛ་པཱན་ནས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༣ ལོར་ Indogaku Mikkyogaku kenkyu ཞེས་པའི་དུས་དེབ་སློབ་དཔོན་ Prof.Yoshi Miyasaka Feli. ཡི་བོད་ཕྱེང་ཁོངས་སུ་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་འདུག དབང་མདོར་བསྟན་པའི་བརྗོད་བྱང་ནི་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༦ ལོར་ Rivista Degli, Studio

Orientali LXX(1-2), ནས་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་ཤིང་། དབང་མདོར་བསྟན་པའི་དཀའ་འགྲེལ་ནི་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༨ ལོར་ Taisho Daigaku Sogo Bukkyo-Kenkyojo, Nenpo,16 (1994) ནས་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་པ་ཞིག་རེད་འདུག

དུར་ཁྲོད་ཆེན་པོ་བརྒྱད་ཀྱི་ངོ་སྤྲོད། ༣༣ - ༨༢

ནང་པའི་སློམ་དང་ཁྱད་པར་གསང་སྔགས་ཀྱི་སྒྲུབ་པའི་ནང་དུར་ཁྲོད་ཤིན་ཏུ་གལ་ཆེ་བ་ཡིན། ནང་པའི་གསང་སྔགས་ཀྱི་གཞུང་རྣམས་སུ་འདིའི་རང་བཞིན་གྱི་སྐོར་བསྟན་པ་ཐོབ་རྒྱུ་ཡོད། ནང་པའི་རྒྱུད་ལས་ཁྱད་པར་བདེ་མཆོག་རྒྱུད་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་རྣམས་སུ་དུར་ཁྲོད་ཆེན་པོ་བརྒྱད་ཀྱི་ངོ་སྤྲོད་བསྟན་ཡོད། དུས་ཁྲོད་འདི་དག་ནི་སྐྱེ་བོའི་མངོན་རྟོགས་ཀྱི་གནས་སྐབས་རྣམས་ཀྱི་བདག་ཉིད་མངོན་པར་གསལ་བར་བྱེད་པ་ཡང་ཡིན།

ནང་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་སྒྲུབ་ཐབས་ཀྱི་གཞུང་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་དུར་ཁྲོད་ཀྱི་སྐོར་ལས་དེའི་རང་བཞིན་ཇི་ལྟར་འཁོད་པ་ལྟར་ན་འདི་ནི་རྒྱུད་ཀྱི་སློམ་སྒྲུབ་ཀྱི་ཆེད་དུ་ཉེ་བར་མཁོ་ཞིང་ཡིད་དུ་འོང་བའི་གནས་ཤིག་ཡིན། དེ་དག་ལ་བརྟེན་ནས་ཇུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོ་ཐོབ་པར་བྱེད་པ་ཡིན། བྲིས་རྩོམ་འདིའི་ནང་དུར་ཁྲོད་དེ་དག་ཏུ་གནས་པའི་ལྗོན་ཤིང་དང་། གནས་བདག་དང་། དེའི་རིགས་དང་། ཕྱོགས་སྐྱོང་། བཙོན་པ། ཕྱག་མཚན། ཀླུ། སྤྲིན། མཆོད་རྟེན་དང་རི་བོ་ལ་སོགས་པའི་ངོ་སྤྲོད་རྒྱས་པར་ཞུས་ཡོད།

པདྨ་བཛྲའི་བཞེད་པ་ལྟར་གྱི་དཀྱིལ་པ་ལ་སོགས་པ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བཞི། ༨༣ -༩༠

བྲིས་རྩོམ་འདིའི་ནང་སློབ་དཔོན་པདྨ་བཛྲས་མཛད་པའི་མངོན་སྤྲོད་ཀྱི་ལས། སྟོན་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ལུས་མེད་སེམས་ཅན་རྣམས་དང་འབྲེལ་བའི་རྒྱུད་ཀྱི་ལས་དྲུག་དང་དཀྱིལ་པ་ལ་སོགས་པ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བཞི་བཅས་དེ་དག་གི་འགྲེལ་བཤད་ཡོད།

གནས་སམ་གདན་ལ་དཔྱད་པ། ༧༡ – ༨༠

འདིར་ཀུཌྜི་ཀཱ་ཡི་དཔར་བསྐྲུན་ཁག་གཉིས་ཀྱི་ངོ་སྤྲོད་ཞུས་ནས་དེའི་ནང་བསྟན་པའི་གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་སྐོར་དང་། གནས་ཞེས་པའི་ཚིག་གི་འགྲེལ་བཤད་བྱས་ནས་རྒྱུད་སྣང་དང་རྒྱུད་གཞུང་སྣ་ཚོགས་སུ་གསལ་བའི་གནས་རྣམས་དང་། དེ་དག་གི་དབྱེ་བའི་སྐོར་ལ་མདོར་བསྡུས་ཙམ་བསྟན་ཡོད། དེ་རྗེས་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་དང་ཀུཌྜི་ཀཱ་གཉིས་ཀའི་ནང་གནས་ཀྱི་གྲངས་ཉེར་བཞི་ཡོད་པ་ཙམ་ལས་ཕན་ཚུན་དབར་གཞན་གང་ཡང་མཚུངས་ཆོས་མེད་ཀྱང་རྒྱུད་སྣང་གི་དཀར་ཆག་གི་ནང་རིམ་པ་བཞིན་ཐོབ་པ་བཀོད་ཡོད། ཤཱཀྟཔཱིཋཿནང་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་པའི་གནས་ཀྱི་གཏན་འབེབས་དང་དེའི་ལྷན་ཐབས་སྣ་ཚོགས་ལ་གཞི་བཅོལ་གྱིས་དཀར་ཆག་འདི་དག་གི་དཔྱད་པའང་བཀོད་ཡོད།

ཆེས་དཀོན་གསུང་རབ་ཁག་གི་རྩ་བའི་མ་དཔེ། ༨༡ – ༩༣

ཀླིཿདུས་དེབ་འདོན་ཐེངས་སུམ་ཅུ་སོ་གཅིག་པའི་ནང་འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་གལ་ཆེའི་གསུང་རབ་ལག་བྲིས་མ་བདུན་ཅུ་དོན་གཉིས་ཀྱི་སྐོར་བསྟན་ཟིན་པ་དང་། ད་ལན་འདོན་ཐེངས་འདིའི་ནང་རྟོག་པའི་གཞུང་བདུན་ཅུ་དོན་གཅིག་གི་ངོ་སྤྲོད་ཞུས་ཡོད།

རྟོག་བརྗོད་ཞེས་པའི་ཚིག་གི་དོན་ནི། ལེགས་པ་དང་། བསླབ་པའི་བདག་ཉིད་ཅན། དཔའ་འཛངས་ལྡན་པའི་བྱ་བའམ་ལས་བཟང་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ཡིན། ཚིག་དོན་གཞན་དུ་ནི་རྟོག་བརྗོད་ཞེས་པ་ནི་དགེ་བ་དང་རྒྱ་ཆེ་བའི་སྤྱོད་པ་ཡང་ཡིན། སྐྱེས་རབས་རྣམས་སུ་གསལ་བ་བཞིན་འདིའི་ནང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྐུའི་སྐྱེ་བ་འདི་དང་སྔ་མ་རྣམས་དང་འབྲེལ་བའི་དམ་པའི་སྤྱོད་པ་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་ལ་བསྟན་ཀྱང་། དེ་གཉིས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ནི་སྐྱེས་རབས་ཀྱི་གཞུང་དུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྐུའི་སྐྱེ་བ་སྔ་མ་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་ལ་བསྟན་ཅིང་། རྟོག་བརྗོད་དུ་སངས་རྒྱས་ཉིད་ཀྱི་སྐོར་ལ་བརྗོད་པ་ཤ་སྟག་ཡིན།

རྙིང་རྒྱུད་རྗེས་འབྲངས་ཀྱི་གཏེར་ཆོས་བྱུང་ཚུལ། ༩༨ – ༡༠༨

ཧཱུཾ༔དུས་དེབ་སུམ་ཅུ་སོ་གཅིག་པའི་ནང་རྙིང་རྒྱུད་རྗེས་འབྲངས་ཀྱི་ཨ་ནུ་ཡོག་དང་། ཨ་ཏི་ཡོགའི་ངོ་སྤྲོད་སྤྱི་ཙམ་ཞུས་ཟིན། འདོན་ཐེངས་འདིར་རྙིང་རྒྱུད་རྗེས་འབྲངས་ཀྱི་གཏེར་ཆོས་བྱུང་ཚུལ་གྱི་ངོ་སྤྲོད་སྤྱི་བཏང་ཙམ་ཞུས་ཡོད།

གཏེར་ཆོས་ཀྱི་སྐོར་ལ་མདོ་ཙམ་བརྗོད་ན། འདི་འདྲ་བའི་གསུང་རབ་ཀྱི་གཞུང་རྣམས་སྐྱེ་བོ་ཕལ་པའི་མངོན་སུམ་གྱི་སྤྱོད་ཡུལ་དུ་མ་གྱུར་པས་ལོ་དུས་འགའི་རིང་མི་སྣང་བའི་ཚུལ་དུ་སྦས་པའམ་གསུང་རབ་ཡི་གེའི་གཟུགས་སུ་བཀོད་པའི་གཏེར་ཆོས་གནས་སྐབས་གཞུང་དེ་དག་གི་སྣོད་དུ་གྱུར་པའི་གདུལ་བྱ་མ་སྐྱེད་པས་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་བསྲུང་ཞིང་མི་མངོན་པའི་ཚུལ་དུ་སྦས་ཏེ་བཞག་པ་ཡིན། དེ་དག་འདོན་པའི་དུས་སུ་ལ་བབས་པ་ན་གྲུབ་པའི་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ལ་རང་གི་ལྷག་པའི་ལྷས་ལུང་བསྟན་མཛད་པ་དང་། མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱིས་སྔར་གྱི་གྲུབ་པའི་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ལ་དབང་བསྐུར་ནས་གཏེར་ཆོས་དེ་དག་ལས་གསུང་རབ་རྣམས་གཏོན་པའི་ཕྱིར་གནང་བ་སྦྱིན་པར་བྱེད་པའོ།།

སངས་རྒྱས་ཀྱི་འདྲ་སྐུའི་བཟོ་རིག་ལ་རྒྱ་ཆེར་དཔྱད་པ། ༡༠༩ – ༡༢༠

ཨཏྲིཡཏིལཀ་དང་འདྲ་སྐུའི་མཚན་ཉིད་ལ་སོགས་ནང་པའི་གཞུང་མང་པོ་ཞིག་ཐོབ་རྒྱུ་ཡོད། དེ་དག་གི་ནང་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་འདྲ་སྐུ་ཐ་དད་པའི་མཚན་དང་། རང་བཞིན་དང་། བསྐྲུན་པའི་ཐབས་ཚུལ་རྒྱས་པར་བསྟན་ཡོད་ཀྱང་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རང་ཉིད་ཀྱི་འདྲ་སྐུ་བཞེངས་པ་དང་དེ་ལ་མཆོད་པའི་ཕྱིར་དགག་པ་མཛད་ཡོད། དེ་ལྟ་ནའང་འདྲ་སྐུ་བཞེངས་པའི་ཐབས་ཚུལ་འདི་དུས་ནམ་འགོ་ཚུགས་པ་དང་། ཇི་ལྟར་འགོ་ཚུགས་པའི་སྐོར་ལ་བྲིས་རྩོམ་འདིའི་ནང་གསལ་བཤད་ཞུས་ཡོད། དེ་དང་ཆབས་ཅིག་སངས་རྒྱས་ཀྱི་འདྲ་སྐུ་བཞེངས་ཕྱོགས་ལ་རྒྱ་ནག་དང་བོད་ནང་ནང་པའི་བྲིས་རྩོམ་གྱི་ལོ་རྒྱུས་འཆད་ཚུལ་གྱི་སྐོར་ལའང་གླེང་ཡོད།

བུ་སྟོན་རིན་པོ་ཆེས་མཛད་པའི་རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་རྣམ་གཞག་བསྡུས་པ། ༡༣༡ – ༡༣༦

བུ་སྟོན་རིན་པོ་ཆེས་མཛད་པའི་"རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་རྣམ་གཞག་བསྡུས་པ་རྒྱུད་སྡེ་རིན་པོ་ཆེའི་གཏེར་སྒོ་འབྱེད་པའི་ལྡེ་མིག"ཅེས་པའི་གཞུང་འདིའི་ནང་རྒྱུད་སྡེའི་སྐོར་དོན་སྙིང་ཤིན་ཏུ་བསྡུས་ཏེ་བསྟན་ཡོད། གཞུང་འདི་ཉིད་ཧིན་སྐད་ཐོག་ཕབ་བསྒྱུར་གྱིས་སྡེ་ཚན་བགོས་ཏེ་འདོན་རྒྱུའི་རིམ་པ་ལས། འདོན་ཐེངས་སྔ་མའི་ནང་ཕར་ཕྱིན་ཐེག་པ་ལས་གསང་སྔགས་ཀྱི་ཐེག་པ་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་ཚུལ་བསྟན་ནས་ད་ལན་འདིར་རྒྱུད་སྡེའི་དབྱེ་བ་བསྟན་པའི་སྐབས་ཀྱི་ཆ་ཤས་ཤིག་ཧིན་སྐད་ཐོག་ཕབ་བསྒྱུར་བྱས་ཏེ་བཀོད་ཡོད།

དོ་ཧཱ་མཛོད་ཀྱི་འགྲེལ་པ། ༡༣༧ – ༡༤༤

སློབ་དཔོན་ནག་པོ་ཞབས་ཀྱིས་མཛད་པའི་དོ་ཧཱ་མཛོད་ལ་པཎྜིཏ་འཆི་མེད་རྡོ་རྗེས་མཛད་པའི་འགྲེལ་པ་གཅིག་ཡོད་པ་འདི་ད་བར་དཔར་དུ་ཐོན་མེད་ཅིང་། སློབ་དཔོན་ནག་པོ་ཞབས་ཀྱི་དོ་ཧཱའི་འགྲེལ་པ་མེཁལཱ་དཔར་དུ་ཐོན་ཡོད་པ་རེད། མ༠ མ༠ ཧརཔྲསཱདཤཱསྟྲི་དང་། པྲོ༠ སྲོ༠ བཱགཆིདང་། ཀྵཡཱཊྚི་གསུམ་གྱི་དོ་ཧཱའི་རྩ་བ་རྣམས་ཀྱི་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་པ་ཐོབ་རྒྱུ་ཡོད། གོང་སྨོས་པར་མ་ལ་གཞི་བཅོལ་གྱིས་ལེགས་བཅོས་བྱས་ཏེ་འཆི་མེད་རྡོ་རྗེའི་འགྲེལ་པ་དང་མཉམ་དུ་འདིར་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་ཡོད།

●●●

ABSTRACT OF ARTICLES

Vajra-mahākālastotra 1-4

The *Vajra-mahākāla Stotra* and *Vajra-yoginī Piṇḍārtha-stuti* have been taken from a collection of 35 hymns obtained from Institute for Advance Studies of World Religions, New York (U.S.A.).

Immaculate Body and Awakened Wisdom 5-18

We have already published chapters 1 to 7 of Āryadeva's *Caryāmelāpaka* in brief Hindi translation. Below are given the translation of the eighth and ninth chapters of the same work.

Collection of lost Bauddha Vacanas 19-22

The paucity of commentaries preclude the chance of obtaining lost Bauddha Vacanas in good number. In the present issue we are placing before readers some sacred utterances of Tathāgata Buddha selected from three minor treatises, namely *Sekoddeśa-ṭippaṇī, Sekoddeśa-Pañjikā* and *Ādikarma-pradīpa.* The last treatise is published in Prof. Yoshi Miyasaka Felicitation Volume appearing in a journal called "Indogaku Mikkyogaku Kenkyu" of Japan. This issue was published in 1993.

The *Sekoddeśa-ṭippaṇī* was published in *Rivista Degli, Studio Orientali*, LXX (1-2) in 1996.

The *Sekoddeśapañjikā* was published in *Taisho Daigaku Sōgō Bukkyo-Kenkyojo, Nenpo, 16 (1994).*

Aṣṭa-Mahāśmaśāna : Nature and Significance 23-42

In Buddhist meditational practices specially of esoterism, cemetery occupies a prominent place. Detailed descriptions of cemeteries are found

in Buddhist treatises-special illustrations of these occur in the maṇḍalas of *Saṁvara Tantra.* Curiously, these cemeteries are symbolic of the eight states of mind in a spiritual sense. What is alluded in the tantras makes it clear that cemetery is a serenely nice abode of practice blessing the beings of enormous wealth and empowerment.

The paper presented here gives large descriptions of "Śmaśāna" with its attributes : trees, guardians, colour, lords, vāhana (vehicle), āyudha (weapon), nāga, megha, caitya and mounts.

Śaṭa-Karma and Ābhicārika-Karma in the Views of Padmavajra *43-50*

The paper deals with the *Ābhicārikakarmas* and the Tāntrika six yogic actions as prescribed by Buddha related with transcendent aspects. The subject has been elaborated by Padmavajra.

The Pīṭha-sthānas Reviewed *51-60*

The journal reviews descriptions and comments on the 24 pīṭhas as occur in the two recensions of the *Kubjikāmata.* Here are defined the term pīṭha along with its kinds and nature as found in *Tantrāloka* and many other esoteric texts. It has been noticed that notwithstanding the no. 24 in all the esoteric works including the *Kubjikāmata*, there is no definite order in placing the shrines, although these are found in sequence in a list of *Tantrāloka.*

The pīṭhas are also reviewed here according to various inventories given in the *Śākta-pīṭhas* and their appendices.

Source Material of Rare Texts *61-93*

In the 31st issue of our journal we noticed 72 important manuscripts. In this issue we provide information of 71 Avadāna treatises.

The term 'Avadāna' essentially means right, educative, heroic deed and a noble task. In other words it means sacred and a character full of

virtues. Like the *Jātaka* stories, Avadānas have tales of noble acts. Thus *Avadāna* literature is closely linked with the *Jātakas*. The difference is only that while *Jātakas* are stories of the past lives of Buddha, Avadānas are meant to pray to him.

Emanation of rñiṅ-ma-pa Revealed Treatises *94-104*

In the thirty-first issue of this journal we introduced the "Anuyoga" and "Atiyoga" systems of rñiṅ-ma sect. Emanation of the revealed texts is the subject-matter of the present paper.

Allegedly, in circumstances where concealment of the sacred treatises seemed necessary in order to protect them from being profaned by the unwary mass they were put under guard by the *ḍākinīs* who kept them in secret places for such a time when they were to be brought to light by the prediction of the sages by such worthies who invoked the *ḍākinīs* (protecting deities) for permitting them to duly bring them to the world of human beings.

The Buddhist Iconography : A Succinct Review *105-120*

Buddhist literature is replete with allusions of various forms of the Buddhist icons with their multi-traits, conceptions and the modal processes. It is a matter of consideration as to when was the making of these images start, when Buddha himself denounced making of his image.

The evolution and development of Buddhist images is discussed here with authentic references of sources in Chinese and Tibetan archives.

Outline of the Esoteric Literature *121-126*

There is a very important work of Ācārya Bu-ston titled *A General and brief composition of key to Deliverance of the Revealed Text of Gem-door*. The text is being translated into Hindi; from the first part of the same

the initial translation is published in this issue q. v. "Classification of Tantra".

A Commentary on the Dohākoṣa 127-155

We give here a text of Paṇḍita Amṛtavajra's newly discovered commentary on Ācārya Kṛṣṇavajra-pāda's *Dohākoṣa.* It is presumably now published for the first time. There is a known *Mekhalā Ṭīkā* on Kṛṣṇapāda's verses. The original text is available in three recensions as of M. M. Haraprasad Shastri, P.C. Bagchi and Sri H. C. Bhayaṇī. All these tracts have been fully utilised in the present recension.

•

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

List of books published under Rare Buddhist Texts Series

1. Guhyādi-Aṣṭasiddhi Saṁgraha (1988) : Rs. 115 Hb, 90 Pb.
2. Jñānodaya Tantram (1988) : Rs. 15Pb.
3. Durlabha Grantha Paricaya Vol. I (1990) : Rs. 55Hb.
4. Durlabha Grantho kī Ādhāra Sāmagrī, Vol. I (1990) : Rs. 40Hb.
5. Bauddha Tantra Kosha, Vol. I (1990) : Rs. 45Hb, Rs. 40Pb.
6. Lupta Bauddha Vacana Saṁgrah, Vol. I (1990) : Rs. 40Hb, Rs. 30Pb.
7. Vasantatilaka of Kṛṣṇapāda with Auto-commentary. (1990) : Rs. 95Hb, Rs. 70Pb.
8. Ḍākinījālasaṁvararahasyam (1990) : Rs. 15Pb.
9. Kriṣṇayamāri Tantra with Ratnāvalīpañjikā of Kumaracandra (1992) : Rs. 150Hb, Rs. 100Pb.
10. Mahāmāyā Tantra with Guṇavatiṭīkā of Ratnākaraśānti (1992) : Rs. 70Hb, Rs. 50Pb.
11. Abhisamayamañjarī of Śubhākaragupta (1993) : Rs. 35Pb.
12. Vimalaprabhāṭīkā, Vol. IInd, Rs. 110Hb, Rs. 75Pb.
13. Vimalaprabhāṭīkā, Vol. IIIrd, Rs. 110Hb, Rs. 70Pb.
14. Bauddha Tantra Kosha, Vol. II (1997) : Rs. 100Hb, Rs. 85Pb.
15. Sūtratantrodbhava katipaya Dharaṇīmantra (1997) : Rs. 75Hb, Rs. 55Pb.
16. Adhyātmasāraśatakam (1997) : Rs. 40Pb.

17. Durlabha Bauddha Grantha Paricaya, Vol II (1997) : Rs. 150Hb, Rs. 125Pb.

18. Durlabha Grantho kī Ādhāra Sāmagrī, Vol. II (1997) Rs. 180Hb, Rs. 150Pb.

19. Bauddha Laghu Grantha Saṁgraha (1997) : Rs. 110Hb, Rs. 80Pb.

20. Siddhaikavīramahātantram (1998) : Rs. 90Hb, Rs. 60Pb.

21. Yoginīsañcāratantram with Ṭīkā (1998) : Rs. 170Hb, Rs. 140Pb.

22. Caryāmelapakapradīpam of Āryadeva (2000) Rs. 160Hb, Rs. 110Pb.

23. Tattvajñānasaṁsiddhi with Commentary : (2000) Rs. 135 Hb, Rs. 100Pb.

24. Kurukullākalpaḥ : (2001) Rs. 100Hb, Rs. 65Pb.

25. Lupta-Baudha-Vacana-Saṃgraha : Vol. II, (2001) Rs. 110Hb., Rs. 70Pb.

26. Sampādana Ke Siddhānta Aur Upādana : (Collection of Articles) (1990) Rs. 150Hb, Rs. 100Pb.

27. Bhāratīya Tantraśāstra (Proceedings of Workshop) (1995) : Rs. 380Hb, 220Pb.

28 ***Dhīḥ:*** Back issues of the journal are also available.

Complete set (Vol. I to XXXI): Total Rs. 2009.00.

